

आगम हित्य-माला

ग्रन्थ : ०

आचाराङ्ग के सूक्त

अनुवादक :

श्रीचन्द्र रामपुरिया, बी० काम०, बी० एल०



तेरापंथ द्विजतान्दी समारोह के अभिनन्दन में प्रकाशित

प्रकाशक

जैन

तेरापथी महासभा

३ पीपलीच नच स्ट्रीट

कलकत्ता

•

प्रथमावृत्ति

जून १९९०

आयात २०१०

•

प्रति सख्या

१३ •

•

कृष्ण सख्या

३२०

•

मुख्य

तीन रुपये

•

मुख्य

श्रीराधाच प्रेस

कलकत्ता—७

प्रकाशकीय

आचाराङ्ग का प्रथम श्रुतस्कंध भाव, माया और जैली की दृष्टि से अङ्गों में प्राचीनतम माना गया है। इस पुस्तक में इस श्रुतस्कंध के सूक्तों का चयन है और साथ ही में उनका हिन्दी अनुवाद। आगम साहित्य-माला का यह प्रथम पुण्य है जिसे महासभा द्विसताब्दी समारोह के अभिनन्दन में प्रकाशित कर रही है। ये सूक्त महावीर की मौलिक धाणी का मार्मिक सन्देश पाठकों को देने।

तेरापय द्विसताब्दी व्यवस्था उपनमिति

३, पोर्चुगीज चर्च स्ट्रीट,

कलकत्ता—१

२४ जून, १९६०

श्रीचन्द्र रामपुरिया

व्यवस्थापक,

साहित्य-विभाग

भूमिका

६ : आचाराङ्ग का स्थान

जैन-आगमों का नाम गणिपिटक रहा। गणिपिटक में बारह अङ्गों की गणना होती है। इन अङ्गों में आचाराङ्ग का स्थान प्रथम है।

बारह अङ्गों में किसका क्या स्थान है यह बताने के लिए श्रुत पुष्प की कल्पना मिलती है जिसमें 'आचाराङ्ग' को दाहिने चरण और 'सूत्रकृतानां' का बायें चरण के रूप में निर्दिष्ट किया है। शरीर में

१—समवायाङ्ग सू० १३६ : इमे दुवाल्लसगे गणिपिट्ठो पन्नत्तो,
तं जहा आपरे...दिट्ठिवाए

२—(क) नवीसूत्र ४३ की चूर्णि पत्र ४७ :

पादयुग जंबोरु गातदुगद्धं तु दोय वाहू य ।

गीवा सिर च पुरिसो वारसअगोसुतविसिट्ठो ॥

(ख) समवायाङ्ग १३६ की टीका : तत्र श्रुतपरम-
पुस्वस्य अङ्गानीवाङ्गानि द्वादशाङ्गानि आचारादीनि
यस्मिस्तद् द्वादशाङ्गम्

परो का स्थान प्रभाव है। आचारङ्ग और सुनहर्षा के मूल पुण्य के दो पर हैं अर्थात् धारा सुत इष्टी के आचार पर कहा है। अपने विना अन्य अङ्ग वपु है। यह प्रकृति भी आचारङ्ग के महत्व को प्रकट करती है।

निधुक्ति के अनुसार तीव्र-प्रतीक के समय तीव्रर सब प्रथम आचारङ्ग का उद्देश्य करते हैं और उनके बाद अन्य अङ्गों का। अन्तर इस उद्देश्य से प्रथम आचारङ्ग को सुनहर्ष करती हैं और फिर अन्य अङ्गों को। दूसरे मत के अनुसार तीव्रर सब प्रथम अङ्गों का उद्देश्य को है पर सुन-अन्तर सब प्रथम आचारङ्ग का ही उद्देश्य है। तीव्रर मत के अनुसार सब प्रथम उद्देश्य और सुन रचना

१—(क) मा० नि० ८

सर्वसिद्धि आचारो सिद्धयस्तु अन्तरये पञ्चमयात् ।

वेदाङ्ग अर्थात् एतद्वरस आनुसूचीत् ॥

(ख) मा० अ० पत्र ३

सर्व सिद्धयस्तु नि आचारस्य अन्तर पञ्चमयात् अन्तरये पञ्चमयात्
एतद्वरस अर्थात् एतद्वरस अन्तरये पञ्चमयात्

२—मयी पूर्ण पत्र ३६ मयी टीका पत्र १०७ मयी पूर्ण पत्र २४०

पत्र २४०

पूर्वों की होती है पर स्थापना सर्व प्रथम आचाराङ्ग की होती है^१ । इसमें दो मत नहीं कि आचाराङ्ग को किमी-न-किमी दृष्टि में अङ्गों में प्रमुख स्थान प्राप्त है ।

निर्युक्तिकार ने आचाराङ्ग की महिमा उसे 'अङ्गो मे प्रथम', 'श्रवण का सार' कह कर की है और कहा है कि 'उममे मोज का उपाय बतलाया गया है' । साथ ही उसे 'विद' शब्द में भी सम्बोधित किया है^२ ।

आगमों में अतुलान के दो भेद मिलते हैं—(१) अङ्गप्रविष्ट और (२) अङ्गवाह्य^३ ।

१—समवायाङ्ग सूत्र १३६ की टीका

२—आ० नि० ६ :

आमारी अगाण अग दुवालसण्हपि ।

इत्य य भोक्खोवाओ एस य सारो पवयणस्स ॥

३—आ० नि० ११ :

णववअचेरमडवो अट्टारसपयसहस्सिओ वेओ ।

४—नदीसूत्र सू० ४४ : तं समासओ दुविह पण्णत्त, त जहा अंगपविट्ठं अंगवाहिरं च

मनसरो के प्रसन्न करने पर तीषणर उपाह-व्यय धीमे रूप
 विनी का उपवेश करते हैं। उस पर से उत्सव मत की समप्रविष्ट
 करते हैं। बिना प्रसन्न अवप्रतिपादन के लिए उपनिष्ट भूम मङ्ग
 बाह्य रहता है। अङ्गबाह्य और अवप्रविष्ट की दूसरी परिभाषा
 इस प्रकार है। एक तीषणरो के तीष में अवस्य उत्पन्न होने वाला
 अवशिष्ट निवृत्त अव अवप्रविष्ट और धनियत अव—विनी तीषणर व
 तीष में होने वाला और विनी के तीष में नहीं होने वाला अवसाद
 कहलाता है^१। शाभारतज्ञ अवप्रविष्ट अव की बोधि से
 बाधा है^२।

२ सुतस्त्वर्षी की अपेक्षाकृत प्राचीनता

शाभारतय से आसक्तियों से निवृत्त है। पहले मज्जिम म न
 सम्यक रहे। जब बात है^३। दूसरे स्वयं न पाव पूजा रही। य

१—विशेषात्कर्मभाष्य बहुस्तुति एव रेवत्

२—मदीशुभ सू० ४५ संज्ञि ह अवप्रविष्ट अवप्रविष्ट
 स्वान्तविष्टि पञ्चत उच्छ्वा—भाष्यारो १ दिष्टिमात्रो १२

३—नियुतिप्रकार मन्वाह के समय तक भी अध्ययन रहे।
 शीलाशौचम मन्वाहिका नामक अध्ययन को सूत्र बताते
 हैं। नियुक्ति के मत से यह अध्ययन ७ वर्ष था। दूसरे
 मूल के अनुसार ८ वर्ष और समवायाह सू० ६ के मत
 से ६ वर्ष।

चार हैं ।

दूसरे श्रुतस्कन्ध में कुल १६ अध्यायन हैं । इन अध्यायनों में से प्रत्येक को 'आचारग्र' कहा गया है । आचाराग्रो का समूह होने से दूसरे श्रुतस्कन्ध का नाम 'आचाराग्र' मिलता है ।

प्रथम श्रुतस्कन्ध के नौ अध्यायनों में से प्रत्येक का नाम ब्रह्मचर्य है । ब्रह्मचर्य अध्यायनों का समूह होने से प्रथम श्रुतस्कन्ध का नाम ब्रह्मचर्य मिलता है ।

प्राचीन उल्लेखों से पता चलता है कि मूल आचाराङ्ग प्रथम श्रुतस्कन्ध प्रमाण था । द्वितीय श्रुतस्कन्ध बाद में उसमें जुड़ा^१ । नियुक्तिकार कहते हैं—'वेद—आचार—ब्रह्मचर्यनामक नौ अध्यायनात्मक है जिसमें अठारह हजार पद हैं । वह बाद में पच चूला

१—नियुक्तिकार भद्रवाहु के समय पाचवी चूला रही । उसके बाद छुस हो गई । इस चूला के दो नाम मिलते हैं— (१) निषीथ और (२) आचार प्रकल्प (आ० नि० २६७ टीका)

२—आ० नि० १२ :

मायारग्गाणत्थो वमचेरेसु सो समयरइ ।

सोऽवि य सत्यपरिण्णाए पिड्ढिअत्थो समयरइ ॥

महिा ह्यामिसे क-परिमाण में यह 'बहु और बहुत ह्या' ।
 यह और बहुत शब्द पर टीका करते हुए शीमाहू निम्नो है
 'आर पुस्तिकात्मक वास्तव्य ने प्रथम से उक्त परिमाण बहु और
 पाँचवीं श्रुति निधीय के अन्त से उक्त परिमाण बहुत ह्या' ।
 निर्वृत्तिकार अर्थ निधीय है 'अन्त-परिमाण आदि नो अर्थक
 है उक्त ही भाषार (मङ्ग) है । वेद भाषाराज है' । जो बात

१—भा० नि० ११

गन्तव्यपरमण्वो बहुतरुपरसहस्रिणो वेदो ।
 ह्यह य सपञ्चमूली बहुबहुतरजो पयसो ॥

२—भा० नि० ११ की टीका

एतत् अर्थकान्तो नक्तव्यपरम्यानिवासाध्ययनात्मकोऽयं
 फलोऽप्यसहस्रसहस्रात्मको वेद भाषार इति सपञ्चमूल्याच्च
 मन्वति बहुशुक्तिरत्तवक द्वितीयं बहुतरु-अप्ययनात्सु
 निधीयार्थ्य मङ्गमन्वित्काम्येनाद्बहुतर पयसो-
 पकारिमाणेन मन्वति

३— भा० नि० ३१ ३२

सत्परिष्णा' सोगविद्यो' सीजोसविद्य' सम्पत् ' ।
 एह सोगसात्नाम भुव' एह महापरिष्णा' य ॥
 अद्यम् य निमोमयो' उवाहापसुय च नक्तम भविष्य ।
 इत्येती भाषारो भाषारगाणि सेवाणि ॥

भाचार में कही छूट गयी अथवा जिनका विस्तार करना जरूरी था उनका समावेश इस 'अध' भाग में है, मत वह भाचाराग्र है' । नियुक्तिकार ने इस विषय पर पुन डाखते हुए लिखा है "भाचार (अङ्ग) प्रथम श्रुतस्कथ के ती अध्ययन जितना ही है । दूसरे श्रुतस्कथ के अध्ययन ती शिष्यो के हित के लिए, अर्थ का अधिक विस्तार करने के लिए जान बूद्ध स्वविरो ने पहले न्व भाचार के अध्ययनो से प्रवि-भक्त किये हैं" । टीकाकार ने यह दिखाया है कि प्रथम श्रुतस्कथ के ती अध्ययन के किल भाग या बाध्य पर से दूसरे श्रुतस्कथ के अध्ययन का विस्तार किया गया है । किस चूला का विषय

१—आ० टीका पत्र २८६

उपकारात्तु यत्पूर्वोक्तस्य विस्तरतोऽनुक्तस्य च प्रति-
पादनादुपकारे वक्तते तद्—यथा कालिकास्य सूत्रे,
अथमेव वा श्रुतस्कन्ध आचारस्य ।

२—आ० नि० २८७ ।

वेरेहिऽणुगाहृद्वा सीसहिय होउ पागळर्थ च ।

आमाराओ अत्थो आचारगेसु पविभक्तो ॥

टीका—स्वविरेः श्रुतबूद्धः चतुर्थपूर्वविद्भिर्निर्बुधानीति ।

वही है जिसे क्या है इत्यादि विस्तार नियुक्ति में भी है^१। आचारारण्य सूत्रि और टीका में प्रथम अल्पव्यय के अन्तिम वाक्य को प्रथम मङ्गल माना है^२। इसमें भी यह निश्चल होता है कि मूल आचारारण्य भी अल्पव्यय में परिमित रहा।

द्वितीय ने लिखा है प्रथम अल्पव्यय आचारारण्य का प्राचीनतम नाम है अल्पव्यय यही मूल प्राचीन आचारारण्य सूत्र है जिसके बाद अन्य इत्यादि नाम भी जोड़ी गईं^३। विशिष्ट निम्नलिखित

१—आ० वि० २८८ २११

२—आ० टी० पृ० १ अल्पव्ययसम्प्रदाय महात्मनिव्यय उपस्थादिभ्याम्पदान मेदास्त्रिषु, अत्रास्मिन्नुक्तं सूत्रं मे जाडसत्तेण मगस्या एवमपञ्चाय मध्यमङ्गलं सोरसाराध्यकं पञ्चमोर्दसङ्गुप से अथा केचि सारस्यमागे, अल्पव्ययसङ्गल नवमाध्यकनेअपानसुत्रम् अग्निनिष्पुडे अर्थात् आचारारण्यं मन्त्र उच्यते।

3 S B E (Vol. XXII, Introduction p XLVII) The first book, then is the oldest part of the Akaranga Sutra it is probably the old Akaranga Sutra itself to which other treatises have been added

हैं "भाषाचार्य का द्वितीय श्रुतस्कन्ध बहुत बाद का है। यह केवल इतने मात्र से जाना जा सकता है कि दूसरे श्रुतस्कन्ध के अध्ययनो को 'चूला' कहा गया है। चूला अर्थात् परिशिष्ट^१।"

द्वितीय श्रुतस्कन्ध प्रथम श्रुतस्कन्ध की अपेक्षा बाद का है परन्तु फिर भी वह बहुत प्राचीन है और नियुक्तिकार भद्रबाहु के समय में वह भाषाचार्य में समाविष्ट था इसमें कोई सन्देह नहीं।

३ : प्रतिपाद्य विषय :

प्रथम चूला में ७ अध्ययन हैं—जिनमें क्रमशः रिडैपणा, शय्या—धमति, इर्या—विहार, भाषा, वस्त्रपणा, पार्श्वपणा, भवग्रह-प्रतिमा के नियम हैं। इस चूला का नाम नहीं मिलता। दूसरी चूला में भी ७ अध्ययन हैं। जिनमें क्रमशः स्थान, निपीयिका, उच्चार-प्रसन्नवण, शब्द, रूप, परक्रिया, ग्रन्थोन्मयक्रिया विषयक नियम हैं। इन चूला का नाम सत्तिक्रिया है। तीसरी चूला में एक ही अध्ययन है। इसमें भगवान् महावीर का जीवन-चरित्र तथा पाँच महाव्रत और उनकी २५ भावनाओं का हृदयग्राही वर्णन है। यह

1. A History of Indian literature (Vol. II, p 437) : Section II of the Ayaranga is a much later work, as can be seen by the mere fact of the sub-divisions being described as Culas, i. e. appendices.

अप्यय्य अर्थिकोऽयं नमः शीरं नुद्ध पद्य मे है । इसका नाम भाषना है । चौथी ब्रूता मे ती एक ही अप्यय्य है । इस ब्रूता मे १२ पद्य मय भाषाओं में गरीर उपरोध है । इस ब्रूता का नाम विमुक्ति है । पाँचवी ब्रूता का नाम निशीह (निशीथ) अथवा आधारापप्य-भाषाप्रकृत है । यह नुद्ध भाषी जाती है ।

इस तरह द्वितीय अक्षरकर्म मे मुख्यतः मति-भाषार का ब्यय्य है । यह कथा आहार मे नहीं दे के उत्तरी 'मया-वसति' कही हो यह निध मयार विहार करे कही भाषा होने नये शीर मिलने बस्य रहे शीर कथे ऊहे प्राप्त करे ऊके प्रसन्न न्या हो कथे ऊके के लिए यह कथे स्वयं का भुगत करे मत्त मूर नहीं कथे विहग्न करे यदि मुनि भाषार कियक नियमो का उसी निस्तुत विधान है ।

कथा कि पहले कथामा है, पहले अक्षरकर्म को 'अक्षरकर्म' कहा जाता है । 'अक्षरकर्म का अर्थ यहाँ 'अक्षर' है' । अक्षर का अर्थ है

१—आ० नि० २८

एव्यं सधिरमपित्री अन्नाभी अर्थिकसंक्रमो मेव ।

मात्रे च अर्थिकसंक्रम भाषणो सक्षमो मेव ॥

टि० मानस्य तु साधुता अर्थिकसंक्रम, अर्थिकसंक्रमो इत्ययं संविद्य एव साधुता अर्थिकसंक्रममिन्नकर्मत्वात्सर्वेति अर्थिकसंक्रम मेव ।

आत्म-निग्रह। प्रथम श्रुतस्कन्ध में मुनियों के यम-नियमों का बल्लेख नहीं है पर वहाँ व्यापक धर्म-भावना और जीवन-ध्यानों समग्र समय के सूत्र हैं। इस अध्ययन में गम्भीर तत्त्वचिन्तन एवं साधक मुनि की साधना के मौलिक सूत्र हैं।

प्रथम श्रुतस्कन्ध के अध्यायों का विषय संक्षेप में इस प्रकार है

१—शस्त्रपरित्रा इसमें जीवों के प्रति समय का उपदेश है। यैन धर्म में छ प्रकार के जीव माने गये हैं। इन जीवों की हिंसा के परिहार का उपदेश इस अध्ययन में है।

२—लोकविजय इस अध्ययन में नावलोक के विजय की बात आई है। जिनसे लोक—कर्म—का बन्ध होता है उन कथायादि पर विजय का उपदेश इस अध्ययन में है।

३—शीतोष्णीय इसमें सुख-दुःख में तितिक्षा भाव रखने का उपदेश है।

४—सम्बन्ध - इसमें सत्य में दृढ़ बद्धा रखने का उपदेश है।

५—लोकसार इसमें लोक में सार क्या है इसका वर्णन है। इस अध्ययन का नाम आवृत्ति^१ भी मिलता है।

६—श्रुत - इसमें निर्मगता का उपदेश है।

१—समवायाङ्ग सू० ६

७—महापरिष्ठा^१ इसमें मोक्षस्य परिपह उपसम को मूलन करने का उपाय है। यह सम्भव विच्छिन्न है। इनके विषय का प्रतिपादन लिपुच्छिन्नार ने इस वाक्य से किया है— 'मोह मन्त्रा परीक्षुपसन्ना'।

८—विमोक्ष^२ इसमें निर्वाण—कच्छिप्या—की विधि है।

९—अन्तानयुव इसमें समान महापीर के बीजा के बाद के बाद वय व्यापी बीज उत्तरी बीजल का वचन है।

उपरोक्त नौ सम्प्रदायों के विषय की चर्चा करने वाली नियमि की भाषाएँ इस प्रकार हैं—

विमोक्षयमो^३ य सोमो यद् वन्नाद् यद् य त् वन्नाहियन्^४ ।

सुहृत्कच्छिप्याभिव^५ समत्^६ सोम्यारो^७ य ॥ ३३ ॥

मिस्तन्वा^८ य च्छु मोक्षसुत्वा परीक्षुपसन्ना^९ ।

नि-वाच^{१०} यमुप नवये य विषेण एषवि^{११} ॥ ३४ ॥

४ उपनिषद् श्रीर आचारान्त

श्री० इत्युक्त भाग्यधिया निकटे है

'वेद श्रीर आचारान्त' शब्दों में स्तुतियोंकी प्रशंसा है पर आचारान्तिक किन्तु बहुत कम मिलता है। उपनिषदों में आचारान्तिक

१—इसके अन्त के नियम ने वैशिष्ट्य भूमिका पृ० ४ पा० टी० ३

२—इसका नाम विमोक्ष (विमोक्षायन्) की लिपिगत है।

सम० सू० ६

चिन्तन उपलब्ध प्रवर्ण्य होता है परन्तु उसमें यह नहीं बताया गया है कि आत्म चिन्तन-मनन एवं साधना का मार्ग क्या है ? साधना के पथिक की दैनिक जीवनचर्या कौसी होनी चाहिए या यो कहिए माधक कैसे चले, कैसे बैठे, कैसे खाये, कैसे पिए तथा किम प्रकार तन, मन और वचन की प्रवृत्ति को आध्यात्मिक मानना की और मोडे, इनका कोई राजमार्ग नहीं बताया गया है ।

“इम तरह उपनिषदों में ब्रह्मवार्ता तो है, पर श्रृङ्खल्य का पना नहीं समता । चिन्तन मनन-करने का उपदेश तो दिया गया है, पर उसके लिए माधक के जीवन में किस तरह की योग्यता, गुण निष्पन्नता होनी चाहिए तथा कितना नयम होना चाहिए, उमण स्पष्ट विवि-विधान प्राचीन उपनिषदों में पग्निञ्जिन नहीं जेना । न नयम का विवि-विधान है, न स्वाग-तप का ही ।

“यदि आध्यात्मिक चिन्तन-मनन एवं नयमी जीवन का माध-त्कार करना ही तो हमारे समय उमण पग्ग्य का यह प्राचीन सर्वोत्कृष्ट काव्य आचाराग मूत्र है ।”

१ जैन-साहित्य का इतिहास : आचाराङ्ग मूत्र ('उमण' अर्द
 ६ अङ्क १ पृ० ८)

५ शैली और रचना समय

भाषारान्त की सभी चीजें उनके रचना समय के बारे में ऐतिहासिक दृष्टि से बिना देखे हुए डॉ० टी० एन० बने एन० ए बी० टी (बम्बई) पीएच० डी (लखन) लिखते हैं —

‘दूसरा सारा स्वयं (अभिन्न काव्यमय अन्वयन बाद होने पर) मुख्यतः यह में लिखा हुआ है और यह वह जन्म-बीज सभी का अर्थात् भाषागत पुनरावर्तन वाला तथा अर्थात् अर्थार्थ के बाहुल्य वाला है। जबकि प्रथम स्वयं की सभी शैली बची है। यह गली केवल यह की (घ० २) और यह यह के नियम की है। बने यह के मुख्य के बाद यहाँ यह का मुख्य भाग रखा है (घ ३ उ० ३ घ० ३ बपरह)। रचना ही गली पर एक एक बी-बी यह जन्म के बाद एक-बी यह पाठे है (घ ३ उ० २, घ ३ उ० ३ बपरह)। कभी तो यह के बीच में यह का एन-बी यह इस प्रकार लिखा रखा है कि उसको अन्वय करना कठिन हो जाता है। (घ० ४ उ० ३ घ० २३८ अ ३ उ ४ घ० २१४ २१५)। यह निम्न सभी बहुत पुरानी है। एतरेय बाहुल्य^१ अनिपद्य

१—सुन शेषमि कमा का उदाहरण सबसे अधिक विधि है।

२—अन्वय और अन्वयक ने यह स्थिति स्थान-स्थान पर है।

और कृष्ण यजुर्वेद^३ में यह शैली पूर्णता को पहुँची हुई दिखती है। जब कि गद्यमयी शैली अपेक्षाकृत प्राच्युनिक है। हमारे, जो पद्य खण्ड गद्यान्तर्गत भागिता होते हैं वे वेदकालीन और सबसे हमारे पुराने त्रिष्टुप्^४, अनृष्टुप्^५ जैसे छन्दों की कड़ियाँ हैं। यह भी शैली की प्राचीनता की सूचना करता है^६।

"भाषा की दृष्टि से तपासने पर . . . जैन आगम में श्री भाषाराम की भाषा प्राचीनतम है।

"श्रीगीता को पद्यात्मक उपनिषद् के काल में रखा जाता है, और श्री भाषाराम सूत्र का श्री गीता के साथ इतना अधिक साम्य देखते हुए तथा शैली में उसका साम्य ब्राह्मण उपनिषद् के साथ देखते हुए श्री भाषाराम सूत्र को जैन ग्रन्थों में सबसे पुराना मानने में और उसे बिलम्ब से बिलम्ब लगभग ई० पू० तीसरे शतक में

३—लगभग सारा कृष्णयजुर्वेद इस शैली में है।

४-५—अ० २ उ० ४ सूत्र १०८-११२ के टुकड़े ऐसे ही हैं।

६—प्रो० शूक्ति ने ऐसे अणों का उद्धार करने तथा उनके मूल की शोध करने का खूब प्रयत्न किया है और उसमें उनको खूब ही स . . . मिली है। देखिए Worte Mahaviras का उपोद्घात।

रूपों में अग्नि नहीं मामूम होती । यह उससे सभी अथ सभी पुत्र का भी हो सकता है ।

इस पुस्तक में आचारार्जुन के प्रथम अध्याय के सूक्तों का संग्रह है । साथ में उनका हिन्दी अनुवाद भी दिया गया है । हिन्दी अनुवाद में कुछ अर्थ को वहीं पर पर्यायवाची शब्दों व वाक्यों द्वारा स्पष्ट करने का प्रयत्न रखा है । वाक्यों के टुकड़े और उनका सम्बन्ध करने चिह्नों के प्रयोग निर्धारित किया है । इन दृष्टि से अन्य अनुवाद और इस अनुवाद में मौखिक अन्तर भी पाठकों को दिखाई देगा । आचारार्जुन कुछ यज्ञीय सूक्त हैं । जैसे इनमें अग्नि और आचार की संहिता कह सकते हैं । अग्नि का अत्यन्त गभीर चिह्न और उच्चोप इतना अज्ञ में है । अन्वय पण पत्नी कीड़े मकान पुत्री अथ वानु वेद और अन्वयि नाम अथ जीवा को एक ठाना पर तोल कर अपने प्रति समान अग्नि मानना रूपों का उपयोग इस अर्थ में स्थान स्थान पर किया है और इसने प्रथम अध्याय के ७ अक्षरों को विशेष कर इसी विषय के विशेषण के लिए प्रयुक्त है । यह अर्थ सूक्तों का अन्वय है और

७—आचारार्जुन सूक्त (सप्त वाक्य) मुख्यतः निम्न पृ०
४३ ४४ तथा ४६ का अनुवाद—

इसके छोटे-छोटे वाक्य महान् जीवन-मूत्र से हैं। पाठक उन्हें पढ़ कर स्वयं इस बात का अनुभव कर सकेंगे।

डॉ० बुशिंग ने आचार्य के प्रथम अतस्कव का जर्मन भाषा में अनुवाद करते हुए उसका नाम Worte Mahaviras 'महावीर के शब्द' रखा है। उनका मत है कि इस अतस्कव में महावीर की मूल भाषी सुरक्षित है। इस विषय में श्री गोपाल दास जीवाभाइ पटेल लिखते हैं —

“आचार्य के सम्बन्ध में तो जहर कहा जा सकता है कि यदि किसी भी सूत्र में महावीर के अपने शब्द मगहीत हुए हों ऐसा कह सकते हैं तो वह आचार्य है।” इस तरह इन सूक्ति संग्रह में पाठकों को महावीर के अपने अर्थगौरवमयी वाक्यों का दर्शन हो सकेगा।

अन्त में मैं उन सब विद्वानों और प्रकाशकों के प्रति अपनी आदरपूर्वक कृतज्ञता प्रकट करता हूँ जिनकी रचना व प्रकाशनों का अवनोकन इन पुस्तक के सम्पादन में सहायक हुआ है। डॉ० एनेन्द्र कुमार ने पाठ मिलाने और प्रूफ सभोवन के कार्य में जो महामत्ता मुझे दी है उसके लिए मैं उनका कृतज्ञ हूँ।

१—महावीरस्वामी जो आचारधर्म (आवृत्ति पहिली) के गुजराती उपोद्घात पृ० १४ का अनुवाद।

पुस्तक सूची

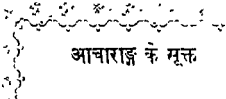
इस पुस्तक के सम्पादन में जिन-जिन पुस्तकों का अवलोकन किया गया है, उनकी सूची इस प्रकार है

- १ श्री आचारण सूत्रम् (मूल, निर्युक्ति, टीका । प्रकाशक श्री मिश्र चक्र साहित्य प्रचारक समिति, बम्बई)
- २ आचारण सूत्र (मूल पाठ डाक्टर वाल्डर मुन्निंग द्वारा गणेशित)
- ३ आचारण सूत्र
- ४ जैन सूत्र भाग १ (अंग्रेजी अनुवाद । अनु० हर्मन जेकोबी Sacred Books of the East Vol. XXII)
- ५ आचारण सूत्र (प्रथम श्रुतस्मृत्य का गुजराती अनुवाद, अनुवादक श्री)
- ६ महावीरस्वामीजी आचार धर्म (गुजराती छाया अनुवाद - सम्पादक गोपालदाम जीवाभाई पटेल)
- ७ आचारण सूत्रम् (प्रथम श्रुतस्मृत्य का हिन्दी अनुवाद । अनुवादक मुनि श्री मौमान्यमल जी)
- ८ आचारण सूत्र (प्रथम श्रुतस्मृत्य का बंगलानुवाद अनु० श्री द्वैरा कुमारी बोधरा)

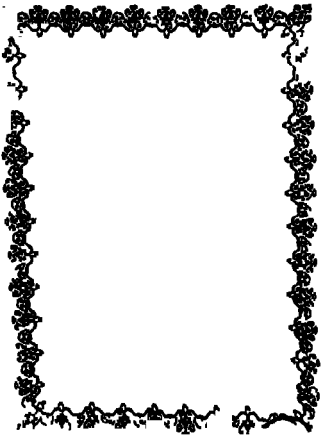
- ८ श्री आचार्य सूत्र (प्रथम अस्तक का हिन्दी अनुवाद ।
 अनु प कवरचन्द्र काठिया)
- ९ जैन साहित्य का इतिहास आचार्य सूत्र (श्री हनुमन्त
 प्रसादगिर्या अमर वप ८ प १२ से)
- १० ब्राह्मण धर्मग्रन्थों का प्रथम भाग होने का ऐतिहासिक प्रमाण (प्रथम
 श्री० श्रीरामलाल रत्नचन्द्र काठिया एम० ए)
- ११ ब्राह्मण विज्ञान (वही)
- १२ A History of the Canonical Literature
 of the Jains वही)
- १३ A History of Indian Literature VOL II
 (by Maurice Winternitz, ph D)
- १४ Some Jaina Canonical Sūtras (by Bimala
 Charan Law M A B L ph D D Litt)
- १५ समवायसूत्र
- १६ मन्वी सूत्र

विषय-क्रम

१	शस्त्र-परिज्ञा	
	(१) आत्मवादी कौन ?	५
	(२) कर्म-समारम्भ	६
	(३) पृथ्वीकायिक हिंसा	१३
	(४) अप्कायिक हिंसा	१६
	(५) अग्निकायिक हिंसा	२५
	(६) वायुकायिक हिंसा	३१
	(७) वनस्पतिकायिक हिंसा	३७
	(८) जलकायिक हिंसा	४३
	(९) शस्त्र-परिज्ञा	४६
	(१०) एकेन्द्रियो की वेदना	६१
	(११) महापथ	६७
२	लोक विजय	७७
३	शीतोष्णीय	१३६
४	सम्यक्त्व	१७३
५	लोकसार	२०३
६	धूत	२५५
७	विमोक्ष	२५६



आचाराङ्ग के मूक्त



सुर्यं मे आउस !
तेषां भगवत्या एवमवधार्यः ।
मैं ने सुना है, आयुष्मन् ।
उन भगवान् ने ऐसा कहा



आपासदी

१—इहमेगेसिं पी सप्ता मवह उगहा—
 पुरखिमाओ वा दिसाओ आगओ अहमसि
 दाहिमाओ वा दिसाओ आगओ अहमसि,
 पखलिमाओ वा दिसाओ आगओ अहमसि,
 कतराओ वा दिसाओ आगओ अहमसि,
 उगहाओ वा दिसाओ आगओ अहमसि,
 अहो दिसाओ वा आगओ अहमसि,
 अण्णवरीओ वा दिसाओ अणुदिसाओ वा
 आगओ अहमसि ।

२—इहमेगेसिं पी प्या मवह—अलि
 मे जाया उववाह्य, अलि मे जाया उववाह्य

आत्मवादी कौन ?

१

आत्मवादी कौन ?

१—संसार में कई लोगों को—“मैं पूर्व दिशा से हूँ, दक्षिण दिशा से आया हूँ, पश्चिम दिशा से हूँ, उत्तर दिशा से हूँ, चर्च्व दिशा से हूँ, अधो दिशा से आया हूँ या अन्य किसी दिशा अनुदिशा से हूँ”—यह सझा नहीं होती ।

२—कइयों को—“मेरी आत्मा औपचातिक—
पुनर्जन्म करने वाली—है अथवा नहीं है, मैं कौन था,

के सूत्र आधी ? के वा ह्यो तुम्ह इह पैदा
अपिस्वामि ?

१—हे न पुन आयेजा सह सममहाप
परमात्मने, अन्नेसिभविष वा सोवाठजडा—
पुरविभाओ वा दिसाओ आगओ अहमधि,
आव अण्णरीओ दिसाओ अणुदिसाओ वा
आगओ अहमधि ।

४—अमैगेसि न पाय यवह—अदि ने
आमा अवाइह, ओ इमाओ दिसाओ अणु-
दिसाओ वा अणुसवठ, सन्नाओ दिसाओ
अणुदिसाओ सोअ ।

१—हे आधावादी कोधावादी कन्धा-
वादी किरियावादी । (सू० १ अ० १ व० १)

आत्मवादी कौन ?

७

एव यहाँ से च्यवकर ग्रीक में मैं क्या होऊँगा ?"—
यह ज्ञान नहीं होता ।

३—स्वमति से, दूसरे के कहने से, अथवा दूसरे से
सुनकर, मनुष्य फिर कमी—"मैं पूर्व आदि किसी
दिशा से हूँ, अथवा अन्य दिशा अनुदिशा से
हूँ"—यह जानता है ।

४— किसी की—"मेरी आत्मा औपपातिक
है—पुनर्जन्म करनेवाली है," तथा "जो इन दिशाओं
अनु-दिशाओं से है तथा सब दिशाओं अनुदिशाओं
में भ्रमण है, वह मैं ही हूँ"—यह होता है ।

५—जिसे ऐसा होता है वही पुरुष आत्मवादी,
लोकवादी, कर्मवादी, और क्रियावादी होता है ।

१

समारमा

१—अकारिस्तं चञ्च, कारवेसु चञ्च

०	१	०	१	०	१	०
०	१	०				

करभो वाभि

सम्पुन्ये मभिस्त्वामि ।

एवावदि सञ्चावदि छोगदि कम्मसमारमा
परिचाणियत्था अवदि ।

२—अपरिष्णावकम्मा सल्लु अय पुरीसे
ओ इमाओ विसाओ अणुरिसाओ अणु
सचरउ, सञ्जाओ विसाओ सञ्जाओ अणु
विसाओ साहेदि । अजेग ह्वाओ बोणीओ
सुवि, विरुण्ण्ये फासे पडिअविदेह ।

: २ :

समारम्भ

१—मैंने किया, मैंने . करते हुए दूसरे का अनुमोदन किया . मैं करता हूँ करवाता हूँ करते हुए का अनुमोदन करता हूँ . मैं करूँगा, मैं कराऊँगा करते हुए का अनुमोदन करूँगा—लोक में सर्व कर्मसमारम्भ—क्रिया के —इतने ही हैं। ये परिज्ञातव्य हैं—इन्हें जानना चाहिए।

२—निश्चय ही अपरिज्ञातकर्मा पुरुष ही है जो इन दिशाओं, अनुदिशाओं से आता है, सर्व दिशाओं अनुदिशाओं को प्राप्त है, अनेक प्रकार की योनियों का उपार्जन है तथा विविध प्रकार के स्पर्शों—दू सों का प्रतिसंवेदन करता है।

३—इमस्तु तेव जीवितस्तु परिवरण
माप्यजपूयजाध आइमरणमोवजाए हुस्तुपति
त्वाचद्वैत ।

प्यादति सज्जादति लोगतु कस्यसमा-
रम्भा परिव्राणिवज्जा भवन्ति ।

४—कस्तेवे लोगतु परि-
ज्जाया भवति से हु सुणी परिव्रणावकमे ति
तेति ।

(सु० १ अ० १ व० १)

३—अपने इस जीवन के लिए, परिवन्दन—यश के लिए, मान के लिए, पूजा—सत्कार के लिए, जन्म और मृत्यु से घुटकारा पाने के लिए तथा दुःख के प्रतिघात के लिए (मनुष्य उपरोक्त रूप से क्रियाओं में प्रवृत्त होता है।)

लोक में सर्व कर्मसमारम्भ—क्रिया की भावनाएँ—इतनी ही हैं। इन्हें जानना चाहिए।

४—लोक में, कर्मसमारम्भ के ये प्रकार जिसे ज्ञात होते हैं, वही परिज्ञातकर्मा मुनि कहलाता है। यही मैं कहता हूँ।

पुढविक्रमसमारम्भ

१—अथगारा सो वि ण्ये पक्ष्यमाणा
 अग्निं सत्योर्हि पुढविक्रमसमा-
 रम्भेण पुढविसत्यं समारम्भेणा अण्य अणेण
 ह्ये पाजे विद्धिसह ।

२—इमस्त्य येन बीभिवस्त्य परिवरण
 माणमप्यथाय, आस्मरप्यमोथथाय, हुक्लपदि
 वायहेऊ, से सकमेण पुढविसत्य समारम्भाह,
 अण्योर्हि वा पुढविसत्य समारम्भावेह, अण्ये
 वा पुढविसत्य समारम्भते समणुजाणह ।

ए से अरियाय, ए से अणोर्हि

पृथ्वीकायिक हिंसा

१—हम अनगर हैं, ऐसा कहते हुए भी कई इन विविध प्रकार के शस्त्रों से, पृथ्वीविषयक कर्मसमारम्भ करते हैं तथा पृथ्वीशस्त्र का समारम्भ करते हुये पृथ्वी के साथ साथ अन्य अनेक तरह के प्राणियों को भी हिंसा करते हैं।

२—मनुष्य, इस जीवन के लिए, सम्मान और पूजा के लिए, जन्म-मरण से छुटकारा पाने के लिए और दुःख निवारण के हेतु, स्वयं पृथ्वीकायशस्त्र का समारम्भ करता है, दूसरों से समारम्भ करवाता है और समारम्भ करनेवालों को समझता है।

यह पृथ्वीकाय की हिंसा, करनेवाले के लिए अहितकर होती है, यह उसके लिए अवधि का कारण होती है।

यस कण्ठु गये, यस कण्ठु मोटे, यस कण्ठु
नाटे, यस कण्ठु परए

१—एकए गङ्गिय डोय बमिय विहय
ह्येहि सत्येहि पुत्रबिकल्पसमारम्भेण पुत्रवि-
सय समारम्भमाये अण्ये अण्येगह्ये पाये
विहिसह ।

४—एव सत्य समारम्भमायसह इत्येते
आरम्भा अपरिष्वाया भवन्ति,
एव सत्य असमारम्भमायसह इत्येते
आरम्भा परिष्वाया भवन्ति ।

१—ए परिष्वाय नेहायी नेव सत्य पुत्रवि
सय समारम्भेणा, नेवत्येहि पुत्रबिकल्प समा

निश्चय ही, यह पृथ्वीकाय का समारम्भ बन्धन का कारण है, मोह का कारण है, मृत्यु का कारण है और यही निश्चय ही नरक का हेतु है ।

३—प्रशंसा-मान-पूजा आदि भावनाओं में गुद मनुष्य इन विविध शस्त्रों द्वारा पृथ्वीकायविषयक कर्म-समारम्भ करता है तथा पृथ्वी शस्त्र का समारम्भ करता हुआ, वह पृथ्वी जीवों की हिंसा के साथ-साथ अन्य अनेक तरह के प्राणियों की भी हिंसा करता है ।

४—पृथ्वीकाय के प्रति शस्त्र-समारम्भ करनेवालों को ये सब आरंभ अज्ञात होते हैं ।

पृथ्वीकाय के प्रति शस्त्र समारम्भ न करनेवालों को इन सब आरंभों का ज्ञान होता है ।

५—यह जानकर, मेवादी न स्वयं पृथ्वी शस्त्रका समारम्भ करे, न दूसरों से इस शस्त्र का समारम्भ

४

उदयसकन्म्यसमारम्भ

१—अजागात् नो सि एषो पथसमाया,
अमिण विह्वस्मेहि सत्वेहि उदयसकन्म्यसमा-
रम्भेण, उदयसस्य समारम्भमाया अण्ये अथैग
स्मे पाथे विदिंसइ ।

२—इयस्य चैव जीभियस्य परिवदजमा
क्यभूपयाथ, जाइमारण्यमोचभाथ, हुक्कपदि
वाचहेठ, से सयमेण उदयसस्य समारम्भति,
अण्येहि वा उदयसस्य समारम्भावेति, अण्ये
वा उदयसस्य समारम्भन्ते समणुबाणम्
व से अदिवाथ, व से अथोदिय

: ४ :

अपकारि हिंसा

१—हम अन्याय हैं, ऐसा कहते हुए भी कई इन विविध प्रकार के शस्त्रों से, अप (पानी) विषयक कर्म-समात्मन करते हैं तथा अपशस्त्र का समात्मन करते हुए, अप के साथ-साथ अन्य अनेक तरह के प्राणियों की भी हिंसा करते हैं ।

२—मनुष्य, इस जीवन में, सम्मान और पूजा के लिए, जन्म और मरण से घुटकारा पाने के लिए और बुद्ध निवारण के हेतु स्वयं अपकार्य-का समात्मन करता है, दूसरों से समात्मन करवाता है और समात्मन करनेवालों को समझता है ।

यह अपकार्य की हिंसा, करनेवाले के लिए, अहितकर है, यह लिए अवधि का कारण होती है ।

एतच्छु गवे, एतच्छु मोहे, एतच्छु
मादे, एतच्छु गरये ।

३—इत्यत्र गत्रिय कोय तसिन्ध विस्वह
वेहिसत्वेहि १ रन्नेय, उद्यसत्त
समारम्भमाजे अजे अजेगह्ये पाथि विहिसत्र

४—एव सत्य इत्येते
आरमा अपरिष्वाया सर्वधि,
एव सत्य असमारम्भमाज्जस इत्येते
आरमा परिष्वाया सर्वधि ।

५—ई परिष्वाय मेहापी वेव सय उद्य
सत्य असमारम्भेया वेवजेहि उद्यसत्त समा

निश्चय ही यह अपक्राय का समारम्भ बधन का है, मोह का कारण है, मृत्यु का कारण है और निश्चय ही यह नरक का हेतु है।

३—प्रशसा-मान-पूजा आदि ओं में गुद्ध मनुष्य इन विविध शस्त्रों द्वारा अपक्राय विपयक कर्म-म करता है तथा अप् का म हुआ, वह अप् जीवों की हिंसा के साथ-साथ अनेक के प्राणियों की भी हिंसा है।

४—अपक्राय में शस्त्र म्म करनेवालों को ये सब आरम्भ होते हैं।

अपक्राय में म न करनेवालों को इन सब आरम्भों का ज्ञान होता है।

५—यह जानकर, मेधावी न स्वयं अप्जी के शस्त्रका समारम्भ करे, न दूसरों से इन शस्त्रोंका समारम्भ

रमायेजा, क्य सत्य समारमतिअवि अग्ने य
समस्तुमायेजा ।

१—अस्येते क्यसत्यसमारमा परिष्वाथा
अवति से ३ सुणी परिष्वावफन्ने वि
वेनि । ११ ३

करावे, और न इन शस्त्रों का समारम्भ करने वाले को समझे ।

६—जिसको अप्जीव विषयक कर्म-समारम्भों का ज्ञान होता है वही परिशालकर्मा मुनि है—ऐसा मैं कहता हूँ ।

५

अग्नि रम्भ

१—अथाराह भो सि ष्यो पश्यमाणा
 अग्निं विश्वहृषेहि सत्येहि अग्निरम्भसमार
 भेभं अग्निसत्य समारम्भमाथे अग्ने अग्ने
 गत्ये पाथे विहिंसह ।

२—इमस्त चेव जीविचस्त परिवक्ष्य
 माष्यपूषणाय, आइमरणमोचजाय, दुस्त
 पठिषायहेतं से समयेभ अग्निसत्यं समारमति,
 अग्नेहि वा अग्निसत्य समारमाथेह, अग्ने
 वा अग्निसत्यं समारमथाथे समयुवाय् ।

त से अदियाय, त से अथोदिए ।

: ५ :

अभिकायिक हिंसा

१—हम हैं, ऐसा कहते हुए भी कई इन विधि के शस्त्रों से अभि विषयक कर्म-समारम्भ करते हैं तथा अभि शस्त्र का समारम्भ करते हुए अभि के साथ साथ अन्य अनेक तरह के प्राणियों को भी हिंसा करते हैं।

२—मनुष्य, इस जीवन में, प्रशंसा, सम्मान और के लिए, जन्म और मरण से छुटकारा पाने के लिए और दुःख-निवारण के हेतु, स्वयं अभिकाय का है, दूसरों से -समारम्भ है और समारम्भ करने वाले को है।

यह अभिकाय की हिंसा, करने वाले के लिए, अहित-कर होती है, यह उसके लिए अवोधि का होती है।

एस बहुत गये, एस बहुत मोरे, एस बहुत
मारे, एस बहुत परए ।

२—इच्छत्य गच्छिष्य कोट समिप मिल्य
ह्येहि सत्येहि अगणिकम्भसमारभेण अगणि-
सत्वं समारभसाथे जन्मे अभेगह्ये पाथे
विरिचह ।

४—इत्य सत्य समारभसाथस्य इच्छते
आरमा अपरिष्याया यवति,
एव सत्य असमारभसाथस्य इच्छते
आरमा परिष्याया यवति ।

५—ए परिष्याय मेहायी जेव सर्व अगणि
सत्य समारभेज्जा जेवप्येहि अगणिसत्य

निश्चय ही, यह अधिकार का समारम्भ कन्दन का है, मोह का है, का है और यही निश्चय ही का हेतु है।

३—मान पूजा आदिओं में गृह मनुष्य इन ि शस्त्रों द्वारा अधिकार विषयक कर्म-समारम्भ है तथा अग्नि का समारम्भ हुआ, वह की हिंसा के साथ-साथ अनेक तरह के की भी हिंसा है।

४—अधिकारमें -समारम्भ करने वालों को ये सब होते हैं।

अधिकार में - न करने वालों को इन सब आरम्भों का ज्ञान होता है।

५—यह , मेघाली न स्वयं अग्नि का समारम्भ करे, न दूसरों से इस का समारम्भ करावे,

३८

आचारान्त के सुख

समारम्भापेक्षा, अगणितस्य समारम्भाणे
अप्ये न समस्तुभापेक्षा,

१- बल्लेवे अगणितस्यसमारम्भा परि-
प्यादा भवन्ति से ह्य मुणी परिप्यावकमे सि
वेदि १।१ ४

और न इस शास्त्र का समारम्भ करने वाले को अच्छा समझे ।

६— जिसको अग्निजीव विषयक कर्म-समारम्भों का ज्ञान होता है, वही परिष्कारकर्मी मुनि है—ऐसा मैं कहता हूँ ।

१

वाङ्मन्त्र समारम्भ

१—अपगादा नो वि एवो पथंभमाणा,
 अमिण विह्वह्येहि सत्येहि वाङ्मन्त्रसमारम्भेण
 वाङ्कायसत्य समारम्भमाप्ते अन्ते अयोगस्ये
 पाप्ते विहितम्

२—इत्यस्य चैव जीवियस्य, परिग्रहण
 मान्यपूयवाप्य, वाङ्मन्त्रमोषवाप्य, हुक्क
 पठिवाप्येह, हे सत्येव वाङ्काय समारम्भदि,
 अन्तेहि वाङ्काय समारम्भापेइ अन्त्य वा
 वाङ्कायसत्य समारम्भान्ते समनुवाप्यम् ।

त से अदिपाप, त से अयोदिय

: ६ :

वायुकायिक हिंसा

१—हम अनगार हैं, ऐसा कहते हुए भी कई इन विविध प्रकार के अस्त्रों से वायु विरयक कर्म समारम्भ करते हैं तथा वायु अस्त्र का समारम्भ करते हुए, वायु के साथ साथ अन्य अनेक तरह के प्राणियों की भी हिंसा करते हैं।

२—मनुष्य, इस जीवन में, प्रशंसा, सम्मान और पूजा के लिए, जन्म और मरण से घुटकाया पाने के लिए और दुःख निवारण के हेतु वायुकायिक हिंसा का समारम्भ करता है, दूसरों से सम्मानम्भ कराता है और सम्मानम्भ करनेवाली को समझता है।

यह वायुकायिक हिंसा, करनेवाले के लिए, अहितकर है, यह उसके लिए अवीधि का कारण है।

एष कञ्चु गये, एष कञ्चु मोहे एष कञ्चु
मारे, एष कञ्चु परए ।

१—इत्यत्र गतिव्युत्पत्तौ अतिव्यतिरेकविह्वलत्वेऽपि
सत्येऽपि वाचकस्य समासोत्पत्तेर्न वाचकस्य सत्य
समासोत्पत्तौ अन्ते अन्ते गत्ये पाठे विहितः ।

५—एष सत्य इत्येते
आत्म्या अपरिष्वाया मयन्ति ।

एष सत्य असमासोत्पत्तौ इत्येते
आत्म्या परिष्वाया मयन्ति ।

६—एतं परिष्वाय मेहायी केव सत्य वाच
कावसत्य समासोत्पत्तौ अन्ते अन्ते वाचकाय

निश्चय ही यह वायुकाय का समारम्भ बंध का कारण है, मोह का कारण है, मृत्यु का कारण है और यही निश्चय ही नरक का हेतु है।

३—प्रकाश-मान पूजा आदि भावनाओं में गूढ मनुष्य इन विविध शस्त्रों द्वारा वायुकाय विषयक कर्म-समारम्भ करता है तथा वायु का समारम्भ हुआ वह वायुकाय जीवों की हिंसा के साथ-साथ अन्य अनेक तरह के प्राणियों की भी हिंसा करता है।

४—वायुकाय में -समारम्भ करनेवालों को ये सब आत्मम होते हैं।

वायुकाय में समारम्भ न करनेवालों को इन सब आत्ममों का ज्ञान होता है।

५—यह जानकर मेधावी न स्वयं वायुजीवकाय-भार का करें, न दूसरों से इस शस्त्र का

सत्य समारम्भापेक्षा, मेघऽग्ने वाठसत्य
समारम्भे समणुधापेक्षा,

६—अस्तेषु वाठकावत्स्यसमारम्भा
परिष्ठाया भवन्ति से ह्य सुणी परिष्ठावत्स्ये
वि वेति ।

(म० १ अ० १ व० ७)

समारम्भ करावे और न शत्रु का समारम्भ करने वाले को अच्छा समझे ।

६—जिसको वायु-जीव विषयक कर्म समारम्भी का ज्ञान होता है, वही परिज्ञातकर्मा मुनि है—ऐसा मैं कहता हूँ ।

७

वपस्त्राकम्पसमारम्भ

१-अणुगारा मो चि एो पवयमाणा,
 कर्मिण विल्वस्त्रोहिं सत्येहिं
 समारम्भेण वपस्त्रासत्य अण्णे
 अणोस्त्रो पापे विहिंसति ।

२-इमस्त्र वेव जीविनस्त्र परिभरण
 माणावपुसजाय, ज्ञास्त्रपमोवजाय, हुक्कपदि
 वायवेर्य, से सयमेव वणस्त्रासत्य समारम्भ
 अण्णेहि वा वपस्त्रासत्य समारम्भावेह, अण्णे
 वा वपस्त्रासत्य समारम्भमापे समपुबान्त ।
 उ से अदिपाय, उ से अवीहीय ।

: ७ :

वनस्पतिक्रायिक हिंसा

१—हम अनगर हैं, ऐसा कहते हुए भी कई इन विविध प्रकार के शस्त्रों से वनस्पति विषयक कर्म-समारम्भ करते हैं तथा वनस्पति का समारम्भ करते हुए, वनस्पति के साथ साथ अन्य अनेक तरह के प्राणियों की भी हिंसा करते हैं।

२—मनुष्य, इस जीवन में, प्रशंसा, सम्मान और पूजाके लिए, जन्म और मरण से घुटकारा पाने के लिए और दुःख निवारण के हेतु, स्वयं वनस्पतिक्राय-शस्त्र का समारम्भ है, दूसरों से समारम्भ करवाता है और समारम्भ करनेवालों को अच्छा समझता है।

यस कहु गये, यस कहु बोहो, यस कहु
मारे, यस कहु बरए ।

३—इण्डस्य मरिचि कोय कल्पिच विहय
सवेहिं सवेहिं बमस्तइकनसमारोय, बमस्तइ
सक समारयमाये अण्ये अण्येसजे पाये
विहिंसदि ।

४—एव सक समारयमायस इण्येते
आरमा अपरिष्वावा मचन्ति ।

यस सक असमारयमायस इण्येते
आरमा परिष्वावा मचन्ति ।

यह वनस्पतिकार्य की हिंसा करनेवाले के लिए अहित-
कर होती है, यह उसके लिए अबोध का होती है।
निश्चय ही यह वनस्पतिकार्य-स वन्दन का
है, मोह का है, मृत्यु का कारण है और यही
निश्चय ही का हेतु है।

३—प्रशंसा, मान, पूजा आदि ओं में रुद्ध मनुष्य
इन विविध शस्त्रों द्वारा वनस्पति विषयक कर्म-
रम्भ है तथा वनस्पति का
हुआ, यह वनस्पतिकार्य जीवों की हिंसा के
साथ-साथ अन्य अनेक के प्राणियों की भी हिं
है।

४— तिकार्य के प्रति -समारम्भ करनेवालों
को ये सब होते हैं।

वनस्पतिकार्य के प्रति म्भ न करनेवालों
को इन सब आरम्भों का ज्ञान होता है।

१—व परिष्याव मेहावी जेव सव वणस्सइ
 सव समासिञ्जा जेवण्णेहि वण्यस्सइसव
 समारभावेजा, जेवण्ये वण्यस्सइसव
 समारभटे समणुवाणेजा,

२—वस्सेवे वणस्सविसवसमारभा
 परिष्यावा ववदि से इ सुणी परिष्यावकन्ने
 —दि वेमि ।

(सु० १ अ० १ व० १)

५—यह मेघावी न वनस्पति का समारम्भ करे, न दूसरों से इस शस्त्र का भ्रम करावे, और न इस का करनेवाले को समझे ।

६—जिसको वनस्पति जीव विषयक कर्म-समारम्भों का होता है, वही परिक्षातकर्मा मुनि है—ऐसा मैं हूँ ।

तसकायकर्मसमारम्भ

१—अपगारा मो सि एगे पबवमाया,
 कमिप विरुपहणेहि सत्वेहि तसकायसमा सेव
 तसकायसत्य समारम्भमाया अप्णे अप्णेगहणे
 पाणे विहिंसति

२—इसस्य वेव भीविबस्य, परिवर्ण
 माजपप्यथाप जाइमरप्यमोवथाप हुक्क
 पडिपायहेव, से सयमेव तसकायसत्य समार
 भति अप्णेहि वा तसकायसत्य समारभागे
 अप्णा वा तसकायसत्य समारम्भमाये
 समनुवाणइ ।

: ८ :

त्रसकायिक हि

१—हम हैं, ऐसा कहते हुए भी कई इन विविध प्रकार के शस्त्रों से त्रस विषयक कर्म-समारम्भ करते हैं तथा त्रसकाय- का समारम्भ करते हुए के साथ साथ अन्य अनेक के प्राणियों की भी हिता करते हैं ।

२—मनुष्य, इस जीवन में, सम्मान और पूजा के लिए, जन्म और मरण से छुटकारा पाने के लिए और दुःख के हेतु, स्वयं का करता है, दूसरों से -समारम्भ है और -समारम्भ करने वाली को अच्छा समझता है ।

व से अहिंसाए, व से अशोहीए ।
 एस कहु गये, एस कहु मोहे, एस कहु
 मारे, एस कहु परए ।

३—इच्छत्य यदिष्टं ह्येव जमिण विरुज
 स्मेहिं सत्मेहिं वसकावसमारंभेन, वसकावसत्य
 समारंभमाथे अण्ये अपेगक्ये पाथे विहिंसति ।

४—एव सत्य समारंभमावस्त इच्छते
 आरभा अपरिण्याया भवति ।

एव सत्य इच्छते
 आरभा परिण्याया भवति ।

यह त्रसकाय की हिंसा, करनेवाले के लिए, अहितकर होती है, यह उसके लिए अवोधि का होती है।

निश्चय ही यह त्रसकाय का समारम्भ वन्धन का कारण है, मोह का है, मृत्यु का है और यही निश्चय ही नरक का हेतु है।

३—प्रशस्ता-मान पूजा आदि भावनाओं में गुह्य मनुष्य इन विविध शस्त्रों द्वारा त्रसकाय विपर्ययक कर्म-समारम्भ है तथा शस्त्र का समारम्भ करता हुआ त्रस जीवी की हिंसा के साथ-साथ अन्य अनेक के प्राणियों की भी हिंसा करता है।

४—त्रसकाय में -समारम्भ करनेवालों को ये सब आरम्भ होते हैं।

त्रसकाय में -समारम्भ न करनेवालों को इन सब आरम्भों का ज्ञान होता है।

१—त परिण्वाद्य मेधाधी षेभ सव तस
 कायसत्य समारभेज्जा, षेवऽभ्येहि तसकायसत्य
 समारभाषेज्जा, षेवऽभ्ये तसकायसत्य
 समारभति समभुजाषेज्जा ।

६—ब्रह्मेते तसकायसमारभा परिण्वाद्या
 मयवि से हु लुणी परिण्वाद्यकर्मै—ति षेवि ।

(अ० १ अ० १ व० ६)

५—यह जानकर मैघावी न स्वयं त्रस जीवकाय के शस्त्र का समारम्भ करे, न दूसरों से इस का समारम्भ करावे, और न इस के समारम्भ करनेवाले को समझे ।

६—जिसकी त्रस जीव विषयक कर्म समारम्भों का ज्ञान होता है, वही परिज्ञातकर्मा मुनि है—ऐसा मैं कहता हूँ ।

६

सत्यपरिन्ना

१—सति पाया पुडोसिया

(सु० १ अ० १ व० २)

२—से वेमि सति पाया उव्यनिसििया

जीया अयेने ।

कम्पद् वे कम्पद् वे पाठ, अहुया विमूसाय

पुडो सत्येहि विष्णुति

कम्पदि वेसि नो निकरणाद

इह च अहु यो । अथाराव अय

जीया विवाहिना

सत्य केव जणुवीह पाठ, पुडो सत्य

पवेर्य

(अ० १ अ० १ व० २)

: ६ :

शस्त्र-परिज्ञा

१—पृथ्वी में अनेक प्राणी हैं ।

२—मैं कहता हूँ—अपकाय के आश्रित अनेक जीव प्राणी हैं ।

‘हमें पीने और विभूषा के लिए जल कल्पता
हैं—ऐसा मान तीर्थी भिन्न-भिन्न हैं द्वारा
अपकाय के प्राणियों को हरते हैं । इस विषय में उनके
निर्णय करने में समर्थ नहीं हैं ।

हे शिष्य ! निग्रन्थ-प्रवचन में ही ओं को जल
का विवेक गया है ।

के को खोजकर देस । जलकाय के
भिन्न भिन्न कहे गये हैं ।

१—जे वीहडोगसत्त्वस्स सेवण्णे से
असत्त्वस्स सेवण्णे, जे असत्त्वस्स सेवण्णे से
वीहडोगसत्त्वस्स सेवण्णे ।

हे वेदि—एदि पाया पुत्रादीनिस्त्रिया
। पचणित्त्रिया कृत्त्रित्त्रिया
गोमचणित्त्रिया क्यवरुत्त्रित्त्रिया, एदि सपात्ति-
मापाया आह्व सपचदि, अगदि च कहु
पुहा एगे सपायमाचञ्जदि, जे एत्थ सपाय
माचञ्जदि ते एत्थ परिवाचञ्जदि, जे एत्थ
परिवाचञ्जदि, ते एत्थ उदायदि ।

(सु० १ अ० १ व० ४)

४—हे वेदि इमपि आह्वयन्मय एवपि
आह्वयन्मय, इमपि बुद्धियन्मय एवपि बुद्धि-

३—जो दीर्घलोकशस्त्र—वनस्पतिकार्य के अग्नि—को जानता है, वह —संयम को जानता है, जो संयम को जानता है वह अग्नि के को जानता है।

मैं ह पृथ्वी के आश्रय में, पत्तों के आश्रय में, गोबर के आश्रय में और कचरे के आश्रय में प्राणी हैं तथा सम्प्राप्तिम प्राणी हैं जो अपने आप गिरते हैं। अग्नि से स्पष्ट हो, ऐसे कितने ही प्राणी सघात को प्राप्त करते हैं, वहाँ को कितने ही मूर्च्छित होते हैं और कितने ही मूर्च्छित हो वहाँ मृत्यु को प्राप्त हो जाते हैं।

४—मैं ह जैसे मनुष्य शरीर सत्पत्तिशील है, वैसे ही यह वनस्पति भी सत्पत्ति ल है, जैसे

एव एव पुनो पास आहुरा परिवाचति ।

से वेमि अप्येगे अवाप ह्यसि, अप्येगे
अत्रिवाप वईति, अप्येगे असाप बहति, अप्येगे
सोभियाप बहति, एव द्विययाप रिचाप वसाप
पिन्दाप पुन्दाप वाकाप सिगाप विसाव्याप
वताप वाताप जहाप प्हाकनीप अहीप अदि
मिवाप

अहुप अजहुप

अप्येगे हिंसिस्तु मेति वा वईति

अप्येगे हिंसति मेति वा वईति

अप्येगे हिंसिस्तसि मेति वा बहति ।

(सू० १ अ० १ व० ६)

देस । विपयार्त्त मनुष्य दूसरे प्राणियों को
परिताप देते रहते हैं ।

मैं कहता हूँ—कोई इन्हें अर्चा के लिए
है, कोई इन्हें चर्म के लिए करता है, कोई इन्हें
मांस के लिए हनन है और कोई इन्हें शोणित के
लिए हनन करता है ।

के लिए, पित्त के लिए, चर्बी के
लिए, पिच्छी के लिए, पूछ के लिए, के लिए, साय
के लिए, कियान के लिए, दाँत के लिए, दाढ़ के लिए,
मज्जा के लिए, नसों के लिए, अस्थियों के लिए और
अस्थि-मज्जा के लिए हनन किया है ।

इसी तरह अर्थ-अनर्थ अनेक प्रयोजनों से इन्हें
है ।

कोई—इसने मुझे मारा—इस भावना से हिंसा
करता है ।

कोई—यह मुझे है—इस से हिंसा
है ।

कोई—यह मुझे मारेगा—इस भावना से हिंसा
है ।

४—वर्धति पाप्मा पविषो रिखासु

पू पञ्चस ह्युपुञ्ज्यापः

आपञ्ज्यसी अक्षियति ष्या ।

हे वेदि सति स्याहता पाप्मा आहव
सपर्वति च अरिष च सङ्गु पुत्रा एते स्याप-
मावञ्जति, जे एव स्यावमावञ्जति ते एव
परिषावञ्जति, हे एव परिषावञ्जति ते एव
अप्यति,

(सु० १ अ० १ व० ७)

७—हपरिष्यायमेहायी वैष सव ह्यञ्जीव
निष्ठावसत्य समारवेजा वैषञ्जीवि ह्यञ्जीव
निष्ठावसत्य समारम्भावेजा, वैषञ्जीवे

६—प्राणी दिशा प्रदिशाओं में पा रहे हैं ।
 हिंसा से होने वाले को देखनेवाला हिंसा
 को आहितकर वायुकाय के से घबने में
 समर्थ हो है ।

में ह—सम्पत्तिम प्राणी हैं जो
 गिर पड़ते हैं । वायुकाय के को वे जीव
 हो जाते हैं । जो वह घायल हो जाते हैं वे
 वहाँ मुक्तिप हो जाते हैं । जो वहाँ मुक्तिप हो जाते हैं,
 वे वहाँ मृत्यु को प्राप्त हो जाते हैं ।

७—बुद्धिमान मनुष्य यह सब घ
 जीवनिकाय का समारम्भ न करे, न दूसरों से घ
 जीवनिकाय का समारम्भ कराये और न घ जीव-

५५

आचार्य के सूत्र

इत्थीवनिक्काय सत्त्व समारमति सममुखापेत्ता,
अस्तेते इत्थीवनिक्कायसत्त्वसमारमा परिष्णाया
मपति से दु मुणी परिष्णाय कन्ने ति वेमि

(सु० १ अ० १ व० ७)

निकाय शस्त्र का समारम्भ करने वालों का अनुमोदन करे ।

जिस मुनि को वह जीवनिकाय के समारम्भ का परिज्ञान होता है—जिसने उसको जाना और छोड़ा है, वही परिज्ञातकर्मा मुनि है ।

१०

एगेंदियवेयना

अप्येगे	अधमम्ये	अप्यगे	अधमम्ये
अप्येगे	पायमम्ये	अप्येगे	पायमम्ये
अप्येगे	गुण्यमम्ये	अप्येगे	गुण्यमम्ये
अप्येगे	अधमम्ये	अप्येगे	अधमम्ये
अप्येगे	आणुमम्ये	अप्यगे	आणुमम्ये
अप्येगे	उरुमम्ये	अप्येगे	उरुमम्ये
अप्येगे	कटिमम्ये	अप्येगे	कटिमम्ये
अप्येगे	वायिमम्ये	अप्येगे	वायिमम्ये
अप्येगे	उवरममे	अप्येगे	उवरमम्ये
अप्येगे	पासमम्ये	अप्येगे	पासमम्ये
अप्येगे	पिडिममे	अप्येगे	पिडिमम्ये

: १० :

एकेन्द्रियों की वेदना

जैसे कोई व्यक्ति जन्मान्ध (बहरे, मूक, गूँ)

पुरुष का भेदन करे छेदन करे

उसके पैरों का भेदन करे छेदन करे ,

उसके गुरुओं का भेदन करे छेदन करे

उसकी जघा का भेदन करे छेदन करे ,

उसकी जानु का भेदन करे छेदन करे ,

उसके सर का भेदन करे छेदन करे ,

उसके का भेदन करे छेदन करे ,

उसकी नाभि का भेदन करे छेदन करे ,

उसके घट का भेदन करे छेदन करे ,

उसके पाखों का भेदन करे छेदन करे ,

उसकी पीठ का भेदन करे करे ,

अप्येगे हरमम्मे	अप्येगे हरमन्ते
अप्येगे द्विययमम्मे	अप्येगे द्विययमन्ते
अप्येगे ययमम्मे	अप्येगे ययमन्ते
अप्येगे सथमम्मे	अप्येगे सथमन्ते
अप्येगे बाहुमम्मे	अप्येगे बाहुमन्ते
अप्येगे इत्ययम्मे	अप्येगे इत्ययन्ते
अप्येगे अगुक्तिमम्मे	अप्येगे अगुक्तिमन्ते
अप्येगे णहमम्मे	अप्येगे णहमन्ते
अप्येगे गीथमम्मे	अप्येगे गीथमन्ते
अप्येगे ह्युमम्मे	अप्येगे ह्युमन्ते
अप्येगे होहुमम्मे	अप्येगे होहुमन्ते
अप्येगे इत्तमम्मे	अप्येगे इत्तमन्ते
अप्येगे त्रिष्ममम्मे	अप्येगे त्रिष्ममन्ते

उसकी छाती का भेदन करे छेदन करे ,
 उसके हृदय का भेदन करे छेदन करे ,
 उसके स्तनों का भेदन करे छेदन करे ,
 उसके कर्णों का भेदन करे छेदन करे ,
 उसकी भुजाओं का भेदन करे छेदन करे ,
 उसके हाथों का भेदन करे छेदन करे ,
 उसकी अंगुलियों का भेदन करे छेदन करे ,
 उसके नसों का भेदन करे छेदन करे ,
 उसकी प्रीणा का भेदन करे छेदन करे ,
 उसकी दाढ़ी का भेदन करे छेदन करे ,
 उसके ओंठों का भेदन करे छेदन करे ,
 उसके दातों का भेदन करे छेदन करे ,
 उसकी जीभ का भेदन करे छेदन करे ,

अप्येगे	वाह्यमन्त्रे	अप्येगे	वाह्यमन्त्रे
अप्येगे	गह्यमन्त्रे	अप्येगे	गह्यमन्त्रे
अप्येगे	गह्यमन्त्रे	अप्येगे	गह्यमन्त्रे
अप्येगे	कृष्यमन्त्रे	अप्येगे	कृष्यमन्त्रे
अप्येगे	जास्यमन्त्रे	अप्येगे	जास्यमन्त्रे
अप्येगे	अश्विर्मन्त्रे	अप्येगे	अश्विर्मन्त्रे
अप्येगे	मसुरमन्त्रे	अप्येगे	मसुरमन्त्रे
अप्येगे	पिडाह्यमन्त्रे	अप्येगे	पिडाह्यमन्त्रे
अप्येगे	सीस्यमन्त्रे	अप्येगे	सीस्यमन्त्रे
अप्येगे	सपमार्य	अप्येगे	सपमार्य

(सु० १ अ० १ वृ० १)

उसके हाथ का भेदन करे छेदन करे,
 उसके गले का भेदन करे छेदन करे,
 उसके गाल का भेदन करे छेदन करे,
 उसके कान का भेदन करे छेदन करे,
 उसके नाक का भेदन करे छेदन करे,
 उसकी अंगुली का भेदन करे छेदन करे,
 उसकी भुजा का भेदन करे छेदन करे,
 उसके कंधे का भेदन करे छेदन करे,
 उसके सिर का भेदन करे छेदन करे,
 उसे पीटे या प्राण रहित करे तो जैसे उसे पीका
 हुआ है वैसे ही पृथ्वी आदि एकेन्द्रिय जीवों को
 होती है।

११

महावीहिं

१—अदुषा अदिन्नादाय

(सु० १ अ० १ प० ३)

२—डोरा च आचार्य अमिसमेवा

अदुषोमय

(सु० १ अ० १ प० ३)

३—हे वेदि मेव सर्वलोग अग्नाइस्तिवा
 मेव अचाय अग्नाइस्तिवा । ते लोय
 अग्नाइस्वा से अचार्य , ते
 अचाय से लोय अग्नाइस्वा

(सु० १ अ० १ प० ३)

: ११ :

१— की हिंसा —बोरी— है ।

२—ती की —उपदेश—से जीव-
की अकुसुम्य का करे—
सी प्राणी को मय न हो ऐसे रूप
सयम का करे ।

३—में हैं—मनुष्य स्वयं का अपलाप
न करे, न अपनी आत्मा का करे । जो
का करता है वह ८ । का १५ ।
है । जो का है वह का
है ।

४—निष्काहता पठितेहिता पतेव परि
 निष्कार्ण सन्धेसि पाप्मान सन्धेसि भूयाव
 सन्धेसि जीवाव सन्धेसि सत्ताव अस्ताव
 अपरिनिष्वाण महम्मथ दुष्कृति वेसि

(सु० १ अ० १ व० १)

५—जे अजन्मव जाणव
 से बहिया जाणव ।
 जे बहिया जाणव
 से अजन्मव जाणव ।
 एवं दुष्कृमन्नेसि

(सु० १ अ० १ व० २)

६—जे पणवे दुष्कृति से ॥ बंधेसि पणुव
 (सु० १ अ० १ व० ५)

—जीवी—है ।

उपदेस—सं जीव-
न पालन करे—
हो ऐसी अभ्यस्य

जीवी का उपलाप
प करे । जो जीवी
अपलाप करता
है वह जीवी का

जैसोंके

जैसोंके जैसोंके जैसोंके
 जैसोंके जैसोंके जैसोंके
 जैसोंके जैसोंके जैसोंके
 जैसोंके जैसोंके जैसोंके
 जैसोंके जैसोंके जैसोंके
 जैसोंके जैसोंके जैसोंके
 जैसोंके जैसोंके जैसोंके
 जैसोंके जैसोंके जैसोंके
 जैसोंके जैसोंके जैसोंके
 जैसोंके जैसोंके जैसोंके
 जैसोंके जैसोंके जैसोंके
 जैसोंके जैसोंके जैसोंके
 जैसोंके जैसोंके जैसोंके

जैसोंके

अर्पेगे वाङ्मय्ये अर्पेगे वाङ्मय्ये
 अर्पेगे गङ्गमय्ये अर्पेगे गङ्गमय्ये
 अर्पेगे गङ्गमय्ये अर्पेगे गङ्गमय्ये
 अर्पेगे कङ्कमय्ये अर्पेगे कङ्कमय्ये
 अर्पेगे जासमय्ये अर्पेगे जासमय्ये
 अर्पेगे खण्डिमय्ये अर्पेगे खण्डिमय्ये
 अर्पेगे भङ्गमय्ये अर्पेगे भङ्गमय्ये
 अर्पेगे गिहाङ्गमय्ये अर्पेगे
 अर्पेगे सीसमय्ये अर्पेगे सीसमय्ये
 अर्पेगे सफमार्ये अर्पेगे सफमार्ये

(शु० १ अ० १ व० २)

अर्पेगे वाह्यमग्ने अर्पेगे वाह्यमग्ने
 अर्पेगे गह्यमग्ने अर्पेगे गह्यमग्ने
 अर्पेगे गह्यमग्ने अर्पेगे गह्यमग्ने
 अर्पेगे कण्ठमग्ने अर्पेगे कण्ठमग्ने
 अर्पेगे प्यासमग्ने अर्पेगे प्यासमग्ने
 अर्पेगे अश्विमग्ने अर्पेगे अश्विमग्ने
 अर्पेगे मसुरमग्ने अर्पेगे मसुरमग्ने
 अर्पेगे जिह्वाकमग्ने अर्पेगे जिह्वाकमग्ने
 अर्पेगे सीसमग्ने अर्पेगे सीसमग्ने
 अर्पेगे सपमारण अर्पेगे सवय

(अ० १ अ० १ व० २

४—निष्कान्ताहता पश्चिच्छेद्विषा पक्षेण परि
 निष्वाण सख्येसि पात्राय सख्येसि सूयाय
 सख्येसि शीवाय सख्येसि क्षयाय अस्त्राय
 अपरिनिष्वाण महम्मयं हुक्क विचेदि

(सु० १ अ० १ प० ६)

५—जे अस्त्राय जाणह,
 ते परिषा काणह ।
 जे परिषा जाणह,
 ते अस्त्राय जाणह ।
 एम तुष्मानेसि

(सु० १ अ० १ प० ७)

६—जे पणवे हुक्करीय ते हुक्केसि नुक्क

(सु० १ अ० १ प० ८)

४—मैं चिन्तन कर, देख कर कहता हूँ—हर प्राणी को सुख प्रिय है। सर्व प्राणी, सर्व मृत, सर्व जीव, सर्व सत्त्वों को अप्रिय, महामय का कारण और दुःख रूप है।

५—जो अपने को—अपनी दुःख की भावना को जानता है, वह बाहर को—दूसरे की भावना को भी जानता है। जो दूसरे की को जानता है वह अन्तस्थल की भावना को जानता है। 'सुख की भावना दूसरों में भी अपने हैं—इस सुख का अन्वेषण कर।

६—जो प्रमादी है, जो विपर्यायी है वह निश्चय ही दण्ड देने वाला—जीवों को हनन करने वाला है।

७—वरिहि एव अमिमूल विदुः सुमर्षाहि
सया अर्षेहि सया अप्यमर्षेहि

(सु० १ अ० १ व० ४)

८—व परिष्णाव मेहापी इयानि षो
जमह पुष्यमन्त्रासी पनाएव

(सु० १ अ० १ व० ४)

९—कजमाप्या पुत्रो पाव

(सु० १ अ० १ व० ४)

१०—जे शुभे से भावदहे, जे भावदहे
से शुभे

(सु० १ अ० १ व० ५)

७—सयत्नी, सदा यत्नवान् और सदा स वीर
 पुरुषों ने कर्मों को कर यह देखा है ।

८—यह मे निश्चय करे कि मैंने
 कश प किया वह अब नहीं करूंगा ।

९—देस । हिंसा से शमनि वाले हैं ।

१०—जी गुण है—विषयासक्ति है—वही 'है—
 -जन्मान्तर का फेरा है, जो 'है—वह
 विषयासक्ति है ।

११—अथ विरिष पाईय पासमाये
स्वाह पासति, सुप्रमाये सदा सुमेति

अथ अय पाईय सुप्रमाये स्वेसु
सुप्रति सरेसु आवि

एत ओप विवाहिय

(सु० १ अ० १ व० ६)

१२—अथ अशुते अजाभाय पुनी पुनी
शुजासाय अकसमायारे पयते अगाद-
मावते

(सु० १ अ० १ व० ६)

१३—से वेमि से अहावि अमगारे
अशुते निवावपडिवण्णे अमार्म सुप्रमाये
विवाहिय

(सु० १ अ० १ व० ६)

११— अघो, तिर्यक् तथा पूर्वादि दिशाओं में
देखता हुआ जीव रूप देखता है, सुनता हुआ जीव
सुनता है।

, अघो, तिर्यक् तथा पूर्वादि दिशाओं में
होता जीव रूप में होता है,
में होता है।

यह मूर्च्छामाव ही गया है।

१२—जो रूप और शब्दादि की आसक्ति से आत्मा
को गुप्त नहीं —नहीं ।—वह का
सर्वसंघन कर बार-बार विषय से वरु

वन प्रमादी हो (पुन) है।

१३—में है—जो है, (

दर्शन-चारित्र्य तप-रूप) मोक्ष-मार्ग जिसे प्राप्त है और जो
माया नहीं वही इन गुणों से मुक्ति कहा गया है।

११—उद्धृष्टं जप विरिष्य पादेषु पासमाणे
 ल्पाद् वासवि, सुष्यमाणे सदाह सुष्येति

उद्धृष्टं जप पादेषु सुष्यमाणे ल्पेसु
 सुष्यति सदेसु आदि

इस ङीव विवाहिन

(सु० १ अ० १ व० ५)

१२—यत्नं जगृह्ये अजागाय पुणो पुणो
 गुणासाय बकसमाचारे पमसे आगार-
 मावसे

(सु० १ अ० १ व० ६)

१३—से वेमि से जगृह्ये अजागारे
 उद्धृष्टे निवायपदिवण्ये असाय सुष्यमाणे
 विवाहिन

(सु० १ अ० १ व० ७)

११—उर्ध्व, अधो, तिर्यक् तथा पूर्वादि दिशाओं में देखता हुआ जीव रूप देखता है, सुनता हुआ जीव सुनता है।

, अधो, तिर्यक तथा पूर्वादि दिशाओं में होता जीव रूप में होता है, में आसक्त होता है।

यह मूर्च्छाभाव ही कहा गया है।

१२—जो रूप और शब्दादि की आसक्ति से आत्मा को गुप्त नहीं —नहीं ।—वह का उल्लास कर बार-बार विषय से बरु अ कल प्रमादी ही (पुन) है।

१३—मैं हूँ—जो ऋजू है, (ज्ञान दर्शन-चारित्र्य-सप-रूप) मोक्ष-मार्ग प्राप्त है और जो नहीं वही इन गुणों से मुनि कहा गया है।

१४—त ऋषिस्सामि सद्गुहाय मया
मह्यं जगत् विदिता त मे ऋषिः
एषोवर्य एषोवर्य एत एषपारेति
पशुन्वह

(सु० १ अ० १ प० ५)

१५—आय सद्गुहाय निष्काली तमेव
जगुपाकिज्जा, विदिता तिसोपिय

(सु० १ अ० १ प० ६)

१६—क्याया वीरा महावीरि

(सु० १ अ० १ प० ७)

१४— को विहित जो मतिमान् 'हिंसा नहीं करेगा'—ऐसी प्रतिज्ञा ग्रहण कर जीव-हिंसा नहीं उपरत—वास्तव में विरत है और जो हिंसा से है—विरत है वही अणगार है।

१५—विश्रोतसिका—शका को दूर रख । जिस के साथ निष्क्रमण किया है—गृह-त्याग कर प्रव्रज्या ली है, उसी के साथ संयम का कर ।

१६—वीर पुरुष अहिंसा के महापथ पर चल चुके हैं ।

१४—अमय को विहित जानकर जो मसिमान् 'हिंसा नहीं करूँगा'—ऐसी प्रतिज्ञा ग्रहण कर जीव हिंसा नहीं करता वही सपरत—वास्तव में विरत है और जो हिंसा से सपरत है—विरत है वही अमयार कहा जाता है।

१५—विघ्नोत्तसिका—शका को दूर रख । जिस के साथ निष्क्रमण किया है—गृहत्याग कर प्रव्रज्या ली है, उसी के साथ समय का पालन कर ।

१६—वैर पुरुष अहिंसा के महापथ पर चल चुके हैं ।

लोगविचयो

१—मे गुणे से मुझ्हाये,
मे मुझ्हाये से गुणे ।

२—शिव से गुणही महया परिवानेय पुणो
पुणो बसे पमरे

३—उज्जहा—माया मे, पिया मे, मज्जा मे,
पुसा मे, बूजा मे, जूसा मे, सहिसयण
सगणसहुया मे, विविचुबगरणपरिवह्य
भोयजच्छायण मे ।

इत्यर्थं गच्छि लोण बसे पमरे ।

१२ .

लोकविजय

१—जो गुण हैं—इन्द्रियों के शब्दादि विषय हैं वे मूलस्थान—ससार के मूलभूत हैं। जो मूलस्थान—ससार के मूलभूत कारण हैं वे गुण—शब्दादि विषय हैं।

२—इसी जो विषयार्थी होता है वह बार-बार प्रमादि-प्रस्त हो महान् परित्ताप से (सतप्त रहता है)।

३—जैसे—मेरी माता, मेरा पिता, मेरी माया, मेरे पुत्र, मेरी पुत्री, मेरी पुत्र-वधु, मेरे मित्र, न, परिजन, परिचित, मेरे नाना लक्षण, सम्पत्ति, अन्न और वस्त्रादि—इस प्राणी इन सब में है।

वह प्रमादी (निरन्तर चिन्ता में) वास करता है।

४—अहो य एधो य परिवर्णमाये
 काहाकाहसमुदाई सवोग्ही अहाहोमी बाहुने
 सहसाकारे पय सत्ते पुणो पुणो

५—अर्ण य काहु आह्य
 मायदाने

६—उंअहा—सोयपरिष्णायेहि परिहाय-
 मायेहि, यरसुपरिष्णायेहि परिहायमायेहि,
 धामपरिष्णायेहि परिहायमायेहि, रसमापरि-
 ष्णायेहि परिहायमायेहि, कासपरिष्णायेहि
 परिहायमायेहि, अभिकव य काहु यय स वेहाय
 सवो से काया महुमाय अययन्ति

४—रात दिन इनकी चिन्ता से सयोगार्थी—
 नाना सुख सयोग को करनेवाला, अर्धलोभी मनुष्य
 और को परवाह न कर, ।
 एकाग्र चित्त से, साहस पूर्वक - निर्मय रूप से—छूट-ससोट
 है और प्राणियों पर धर-धार है—
 उनकी हिंसा है।

५—निश्चय ही इस संसार में कितने ही मनुष्यों का
 खानुष्य — शोका - होता है।

६—श्रोत्रेन्द्रियज्ञान के होने पर, च के
 क्षीण होने पर, नासिकाज्ञान के क्षीण होने पर, जिह्वाज्ञान
 के होने पर, तथा स्पर्शेन्द्रियज्ञान के क्षीण होने पर
 अपनी को देख कदाचित् वह किर्कर्तव्य
 विमूढ़ हो है।

७—जेहि वा-सहिं सबसह ते वि अ
 यामा यिमगा पुमिं परिवयन्ति सीऽपि ते
 विवप पच्छा परिवपच्छा

८—वाक ते एव वाप्याय वा सरप्याय वा,
 हुम वि वेहिं ताक वाप्याय वा सरप्याय वा,

९—हे व हासाय, व कीहाय, व विमूसाय

१०—इण्येव समुद्रिय अहोविहाराय

११—अन्तर व कल्ल इम सनेहाय भीरि
 महुसमधि गो कमायय

७—जिनके साथ वह है, कदाचित् वे ही आत्मीय जन पहले उसका परिहार करते हैं, अथवा वह ही उनका वाद में परिहार करता है ।

८—उस (जब इन्द्रिय-बल क्षीण हो रहे हों) कुटुम्बी ही रक्षा करने या तुम्हें शरण देने में समर्थ नहीं होते और न तुम ही उनकी रक्षा करने या उन्हें देने में समर्थ होते हो ।

९—गृह हो जाने पर मनुष्य न हास्य के हो, न कीटा के हो, न रस के हो और न गृहार के हो योग्य है ।

१०—इस तुम लम्बी पर हो ।

११—इस मनुष्य-भव को बीच का मौका—सुरोण—समस्त धीर मनुष्य भर भी न करे ।

७—जोई वा-सर्दि संवस्य से वि य
 क्यावा दिवगा पुन्वि परिषदन्ति सोऽपि से
 निवय पञ्जा परिषयन्ता

८—साह से क्व साथाय वा सपथाय वा;
 कुं वि सेवि साह वाजाय वा सपथाय वा;

९—से य सासाय, य कीहाय, य विमूसाय

१०—इन्वेन समुद्रिय अहोविहन्तय

११—सायर्द य कहु इय सपेहाय परि
 म्भुचयवि यो पमावय

४—जिनके साथ वह है, कदाचित् वे ही आत्मीय जन पहले परिहार करते हैं, अथवा वह ही उनका बाद में परिहार है।

५—उस (जब इन्द्रिय-बल क्षीण हो रहे हों) कुटुम्बी तुम्हारी रक्षा करने या तुम्हें शरण देने में समर्थ नहीं होते और न तुम ही उनकी रक्षा करने या उन्हें देने में समर्थ होते हो।

६—बुद्ध हो जाने पर मनुष्य न हास्य के ही, न लीला के ही, न रति के ही और न शृङ्गार के ही योग्य है।

७—इस तुम लम्बी पर हो।

८—इस मनुष्य-भेद को बीच का भौका—सुयोग—समस्त धीर मर भी न करे।

१२ वसो अण्येति बोधना च

१३—वापिप इह जे पसाया, से हवा,
हेवा, मेवा, सुपिवा, विष्पुपिवा, इदेवा,
इवासाया अकट करिस्वामिति मण्यवाये

१४—इवाहयसेसेन वा अनिहिसनिचजो
निजई इमेगेति असत्राय मोयथाय, वसो
जे पसाया रोमसमुप्याया समुप्यजति

१५—वापिपु हुकव पसेव धाव

१२— और जीवन बीता जा रहा है ।

१३—जो इस नाशवान् जीवन में प्रमादी होता है,

वह —घात करने , छेदक—छेदन करने ,
 भेदक—भेदन करने , लोपक—लूटने , विलो-
 पक—लूट-खसोट करने , सपद्रवी—भारने वाला
 और — उत्पन्न करने , 'जी में
 नहीं किया वह मैं करूँगा' ऐसा हुआ (अपनी
 ह को साथ लिए हुए हो चला है) ।

१४—इस संसार में कई-कई असह्यसी मनुष्य बने हुए
 अथवा द्रव्यों का अपने सम्भोग के लिए सेचय
 करते हैं, पर सम्भोग के कदाचित् रोगग्रस्त
 हो पड़ते हैं ।

१५—हर के दुःख पुथक्-पुथक् हैं—यह

अणमिकर्तव्यं च कस्तु इयस्योद्गाय कण आजाहि
पठिष्य

१६—आय सोयपरिष्वाणा अपरिशीया,
नेसपरिष्वाणा अपरिशीया, चायपरिष्वाणा
अपरिशीया श्रीहपरिष्वाणा अपरिशीया,
परिसपरिष्वाणा अपरिशीया, इत्येयहि
विरुपक्येहि पञ्चाजेहि अपरिशीमिहि आकष्ट
सम समष्टुपासिजासि

(सु० १ अ० २ व० १)

१७—अय आकष्टे से मेहाणी, कनसि
कनसे

तथा दाही वची आयु को देखकर, हे पंडित !
इसी क्षण को (धर्म का) अवसर ।

१६—जब तक श्रोत्र-बल नहीं होता, नेत्र बल
नहीं होता, प्राण-बल क्षीण नहीं होता, जिह्वा-बल
नहीं होता, बल क्षीण नहीं होता—ये सारे बल
- उसके पहले-पहले ही आत्मार्थ का क
रूप से—अच्छी से— न कर ।

१७—अरति—संयम के प्रति अशुचि भाव—को दूर
कर, ऐसा करनेवाला मेधावी क्षण मात्र में मुक्त होता है ।

१८—अणायाम पुद्गाधि एते विषदृ ति,
मदा मोहेण पावडा

१९—अपरिमहा मविस्वामी ससुद्गाय
कन्दे कामे अमिगाहृ, अणायाम मुणियो
पठित्ति

२०—इव मोहे पुणो पुणो सन्ना नो
इव्याए नो पाराए

२१—विमुचा हु ते अणा ले अणा पार-
णामियो ओममओमेण हुगुहमाणे कन्दे कामे
आमिगाहृ

१८—कितने ही मन्दबुद्धि मोह-ग्रस्त पुरुष
 से—धर्म के प्रति अरुचि मात्र से—युक्त हो, समय से
 पतित हो जाते हैं ।

१९—हम अपरिग्रही बनेंगे—इस से संयम में
 समुत्थित होकर कितने ही (मद पराक्रमी पुरुष) प्रास-
 मोगी को ग्रहण करते—सेवन करते हैं। कितने ही
 (नामधारी) मुनि, वीतराग देव को के खिलाफ,
 विषय मोगी को दुर्दृष्टि रखते हैं ।

२०—इस प्रकार पुन-पुन विषयी के मोग में आसक्त
 पुरुष न इस पार का है न उस पार का । (वह न
 इस लोक का है न परलोक का ।

२१—जो पुरुष पारगामी हैं—लोम-सञ्जा को पार कर
 चुके—वे विमुक्त हैं। वे लोम के प्रति अलोम से घृणा
 करते हुए, प्रास मोगी का सेवन नहीं करते ।

२२—विणानि डोम विवस्वन् एत अकमे
आण्ड पासइ

२३—पडिडेहाए यावकसाइ, एत अथगारिषि
पतुण्वाइ

२४—से जायबळे, से नाइबळे,
से मिचबळे, से पिचबळे,
से इचबळे, से रायबळे,
से चोरबळे, से अविदिबळे,
से फिविपबळे, से समपबळे,
इन्पेयदि विल्वस्वोदि कज्जेदि
वडसमावाणं

२२—जो बिना किसी प्रकार के लौम के, निष्कर्मण
 बन—प्रवृत्तिया कर—(का करता
 है) वह कर्म-रहित हो सद और देखता है ।

२३—यह विचार कर लो कि जो (हुए विषयों
 की) का नहीं , उसे गया है ।

२४—वह आरम्भल—शरीरल, ज्ञातिल, मित्रल,
 प्रेतल, देवल, , चौरल, अतिरि , कृपणल,
 (इनको पाने के लिए) इन भिन्न-भिन्न
 के कर्षों द्वारा दण्ड-समाधान—हिंसा है ।

२३—सपेहाय मया कञ्चिद् पादमुत्सृष्टि
 मन्मथान्ते, अमुवा आसताय

२४—तं परिष्याय वेदाधी तेषु सव
 पर्यदि कञ्चोर्दि इह समारम्भिता,
 तेषु अन्तं पर्यदि कञ्चोर्दि इह
 समारम्भाधिक्यता, पर्यदि कञ्चोर्दि
 इह समारम्भत पि अन्त न
 समस्तुताधिक्यता

२५—एतं मनो आरिषदि पवेद्य
 अत्रेव कुसले नोवर्तिपिञ्जासि

(सु० १ अ० २ व० २)

२५—(के हिंसा) या तो
 (उपरोक्त) विचार से जाते हैं या भय से ।
 या तो पाप से मुक्ति होगी, ऐसा हुआ मनुष्य
 कार्य है, अथवा वि से ।

२६—यह जान कर मेधावी पुरुष इन हिंसात्मक
 कार्यों के द्वारा दण्डसमारम्भ न करे— प्राणि-
 हिंसा न करे, न इन कार्यों दूसरों से ।
 करावे—प्राणी-हिंसा करावे और न इन कार्यों ।
 करानेवाले—हिंसा करने वाले—दूसरे व्यक्ति
 को समझे ।

२७—यह अहिंसा का मार्ग में प्रवेदित है—
 कहा गया है ।

अतः पुरुष अपने की इस हिंसा में लिप्त
 न करे

२८—हे बसह उवागोय, बसह नी
 उवागोय,

नो हनि नो उहरिसे,

नोउपीहय,

इय उवाय नो गोवावाइ नो माणावाइ ?
 कसि वा एो गिक्का

२९—कहा नो हरिसे नो कुये,

पुयदि वाय पकिडेइ उाय,

समिय क्यानुपस्ती

२८—यह जीव अनेक धार उच्च गोत्र में उत्पन्न हुआ है और अनेक धार नीच गोत्र में ।

इससे न कोई हीन हुआ और न अतिरिक्त (जीव सदा अंत प्रदेशी ही रहा और उ मय- नहीं घटा) ।

(जिसका सम्बन्ध मय-भ्रमण के साथ है) उसको मत करो ।

यह विचार कर कौन अपने गोत्र का वाद करेगा—

खिदोरा पीटेगा ? कौन उसका अम्मान करेगा ?

वह किस एक वाद में गुद होगा - आसक्त होगा ?

२९—अतः (अपने उच्च गोत्र का) हर्ष न करे, न (नीच गोत्र के) दूसरे किसी के कुपित ही ।
विचार कर जान, — सब जीवों को प्रिय है ।

यह देखने समित हो (किसी का दुखाने ध्यवहार न करे) ।

१०—उजहा—अथत्, बहिरत्, मूयत्,
 कायत्, कुयत्, कुयत्, कडमत्, सामत्,
 सप्तत्, सद् पमायत् अयेगह्याजो धोयीजो
 सभायः, विह्य-उये फाडे पठित्विया

११—उे अहुज्ज्याने इमोमह्य काईमरत्
 अगुपरिपट्ट्याने

१२—वीथिर्षं पुत्रो पिर्षं इमेगेति नाम्बानं
 किरत्तुयमायमाज्याय

३०—अधा होना, होना, गुणा होना,
 होना, ठूठा होना, कुबड़ा होना, बीना होना,
 होना और कौड़ी होना (—यह सब अभिमान का ही
 है)। प्रमाद के ही जीव विविध रूप—
 नाना योनियों में जन्म ग्रहण करता है, और अनेक
 : के स्पर्शों का संविदन है (—
 की यातनाओं की भोगता है)।

३१—(जाति आदि मद से इस हीनत्व प्राप्त
 होता है—) यह न समझने (अभिमानो) पुरुष
 हतोपहत हो, जन्म मरण के चक्र में — —
 है।

३२—इस ससार में क्षेत्र और गृह्यादि में —मोह
 करनेवाले मानवों को जीवन पृथक् रूप से—
 रूप से— है।

३२—आरत विरत मणिकुण्डल सव
हिरण्येन इत्थिचामो परिगिम्भाति कल्पे
रथा ।

म इव वषी वा हसो वा निचमो वा
विच्छा

३३—सपुष्पं नाके कीदिकमाने काकभ
माने मूढे विप्यरिवाद्युक्ते

३४—इयमेव नायकमिति, के वषा कुव-
वारिभो । आह्वयार्थं परिष्पान्, वरे वृकल्पे
के ।

३५—वसिष्ठ आकलत वात्मनी

३३—वे रत्न-विरागे , मणि, कुण्डल, स्वर्ण और
स्त्री प्राप्त कर उन्हें में रहते हैं ।

उन्हें यहाँ तप, दम, नियम—कुछ नहीं दिखाई
देता ।

३४—जीवन की कामना करने निराश
(अत्यागी) और मूढ़ मनुष्य, मोगों के लिए
हुआ विपर्यय भाग को प्राप्त होता है ।

३५—जो मनुष्य ब्रह्मचारी हैं वे सात्त्विक विषय
मोगों की शा नहीं करते । मुमुक्षु जन्म-मरण के
को जानकर समय में अपना पूर्वक विचारे ।

३६—काल के लिए कोई समय आ नहीं ।
सि कोई मुक्त है, ऐसा नहीं है ।

१३—आरसं विरसं मज्जिह्वम्बुसं सद्
द्विरण्येन इत्यिवाजो परिगिह्वन्ति कस्येव
रसा ।

न इत्य एवो वा इमो वा निवसो वा
विस्वइ

१४—सुपूर्णं वाटे श्रीविश्वकामे काठप्य
माणे शूले विम्बिवाचमुषेइ

१५—इमेव नावकसाधि, के जया सुव
चारिणी । आश्मरण परिष्नाय, बरे सक्कामे
वडे ।

१६—पलि काठस्य जामलो

३३—वे राज-द्विगे वस्त्र, मणि, कुम्डल, स्वर्ण और स्त्री प्राप्त कर उन्हें में रहते हैं।

उन्हें यहाँ तप, दम, वि —कुछ नहीं दिखाई देता।

३४—जीवन की करने निरा धल (अध्यापी) और मूढ़ मनुष्य, भोगों के लिए हुआ विपर्यय भाव को प्राप्त होता है।

३५—जो मनुष्य प्रवृत्तारी हैं वे साधारण विषय भोगों की धा नहीं करते। सुमुह् जन्म-मरण के को समय में पूर्वक विधरे।

३६—काल के लिए कोई समय ज नहीं।
 वे कोई मुक्त है, ऐसा नहीं है।

३० सन्धि पाप्मा विद्यात्मना,
 सुखाया सुखसपत्तिरूपा,
 अविग्रवा विवर्तीविष्णो,
 जीवित्वात्मा,
 सन्धेति जीवितं विद्य ।
 नाहवाह्य कथय

३८—सुखिना तु परं परोक्षं
 अयोह्यता पर नो व जीर्णं वरिष्ठम्,
 अवीरगता पर नो व तीरं गमितम्,
 अपारंगता पर नो व पार
 गमितम्,

३४—सर्व प्राणियों की आयु प्रिय है ।

सब को सात्कार्यी—अनुकूल है और दुःख सब
को प्रतिकूल ।

यद्यपि सब को अप्रिय है और जीवन सब को प्रिय ।

सर्व प्राणी जीने की करते हैं ।

सब को जीवन प्रिय है ।

अतः प्राणी की हिंसा मत करो ।

३५—मुनि ने यह है—

निश्चय ही ये जी अना हैं—क्रोध, मान,
लौभ को नहीं तिरते वे को नहीं तर सकते हैं ।

ये जी अतीरागम हैं—इन्द्रियों के को
सीर नहीं पहुँचते, वे संसार के लट पर नहीं
सकते ।

ये जी हैं—राग-द्वेष के पार नहीं पहुँचते
वे का पार पाने में समर्थ नहीं हो ।

३६—आयामिञ्ज व आयाव तमि ठापे
व विह्व । विह्व पल्पश्लेयन्ने तमि ठाममि
विह्व ।

४०—असो वासगस्त पथि

४१—बासे पुष निहे कामसमपुन्ने
असमियदुक्के दुक्की दुक्कायनेव आया-
म्यापरिवह

(अ० १ अ० २ अ० ३)

४२—वसो से एसा रोगसमुपावा
स्तुप्यज्जावि ।

४३—जेहि वा सदि सकसद् से एव व
एगवा नियमा पुम्बि परिवधदि, सो वा से
नियगो पन्का परिवधजा

३९—अज्ञानी पुरुष लक्ष्य भी समय-में
नहीं । वह वितथ्य को में
है ।

४०—प —द्रष्टा—के लिए उपदेस्य नहीं है ।

४१—मूर्ख, मोहग्रस्त और व्यक्ति का
दुःख क्षमित नहीं होता । वह दुःखी व्यक्ति दुःखों के
ही आवर्ष में अनुपरिवर्तित होता रहता है दुःखों के ही
चक्र में जन्म-मरण है ।

४२—फिर उसके कदाचित् एक ही साथ उत्पन्न
अनेक रोगों का प्रादुर्भाव होता है ।

४३—जिनके साथ मनुष्य वास करता है, वे ही निज
के लोग उसकी पहले निन्दा करते हैं, अथवा वह ही
पीछे उनकी निन्दा है ।

४४—नाक से सब हायाय वा सरयाय वा,
हुमपि वेसि नाक हायाय वा सरयाय वा

४५—आपिहू हुक्क पचेरं साम

४६—मोगा मे व अपुसोवदि इमेगेसि
माजबाण

४७—ए परिगिह्म हुपरं बहव्यव कामि
कुभिया व सखिचिबाण विधिरेण आइवि से
एतव मचा मवाह, अप्या वा बहुवा वा, से
एतव गदिय चिहू ओजजाय

(सु० १ अ० २ व० ३)

४४—रोग उत्पन्न होने पर वे री रक्षा करने में या उन्हें देने में समर्थ नहीं होते, और न सुम ही उनका त्राण करने या उन्हें देने में समर्थ हो।

४५— दुःख प्रत्येक को ज (दूसरों के मोह से पाप कार्य मत कर)।

४६—इस में मनुष्यों में एक-एक ऐसे होते हैं जो केवल मोर्गों का ही अनुसोच—उन्हें की करते रहते हैं।

४७—फिर वह द्विपद चतुष्पद की रत्न, उन्हें में लगा, तीन तीन योग से है और सक्ति वस्तुओं की जो भी है थोड़ी या जकिक उसमें वह भोग करने के लिए आसक्त रहता है।

४८—सञ्ज्ञो हे एवावा विपरिसिद्ध समूय
मञ्जोवगर्ण मयइ ।

४९—स वि से एवावा शवावा विमयन्ति,
अरुचद्दारी वा से अवाहरवि, एवाणो वा से,
विभुपन्ति मस्य वा से विपत्सइ वा से,
अगारवादेय वा से कण्ठ ।

५०—इव से वरस अहाय कूटपि कम्पापि
वाले पञ्चमाने वेय दुक्सेय मूडे विपरिया-
सहवेइ

५१ कासं च छसं च विगिच धरि । इम
नेव व सङ्गमइइइ

४८—फिर क मैं बनी हुई च की
 वह भोग सामग्री इकट्ठी हो जाने से वह प्रचुर राशि
 हो है।

४९—उसकी कमी —भागीदार बाट लेते हैं,
 कमी उस सम्पत्ति को चोर चुरा है, कमी
 उसे लेता है; कमी वह को प्राप्त होती है,
 कमी वह विलट हो जाती है और कमी घर में अग्नि
 लगने से वह जल जाती है।

५०—इस वह मूर्खों के यह कर्म
 हुआ उस दुःख से—धन के नाश होने से उत्पन्न
 दुःख से—मूढ़ धन विपर्यास को प्राप्त है।

५१—हे धीर पुरुष। तू और । का
 त्याग कर। तू इस कटि को रख कर, अपने ही आप
 दुःखी होता है।

५०—जेण सिधा, सेण नो सिधा, इणमेव
 नावहुण्णकवि ते जया मोहपासका

५१—धीमि कोद पण्णद्विय
 ते भो । वयन्ति 'धवाह् धावपमाह्'
 से हुक्काय्, मोहाय्, माराय्,
 मरगाय् मरणातिरिक्काय् ।

५४—सयव सूहे वप्प नामिवाण्ह,
 उवाह्— वरि जप्पमाण्णो महामोहे,
 मळ कुसळस्त पमाएण्ण, उविमएण्ण

५२—जिससे—जिस धनादि से—तुम्हारी इन्द्रियों को सुखानुभव होता है, उससे तुम्हारी आत्मा को सुख नहीं होता ।

जो मोहग्रस्त हैं वे इस को नहीं समझते ।

५३—यह संसार से प्रव्यथित है—हार चुका है । विषयार्थी मनुष्य स्त्रियों को सुख का आद्यतन—घर—कहते हैं । हे मनुष्यो ! यह कथन उनके लिए दुःख, मोह, मृत्यु, तथा -तिर्यच योनि का कारण होता है ।

५४—सतत मूढ़ मनुष्य अपने धर्म को नहीं जानता । वीर पुरुषों ने महामोह में—काचन कामिनी में—अप्रमाद कहा है—प्रमाद न करने की शिक्षा दी है । अप्रमाद से शान्ति—मोक्ष—और प्रमाद से मृत्यु देख कर तथा इस शरीर को मंगुरधर्मी जान कर, पुरुष की प्रमाद

सपेहाय मेरुधन्म सपेहाय, नास
 पास
 अक से एषहि
 एव पस्त मुनी । महम्मय ।

६६

कथय

६६—एस वरि पसंदिप, मे व निम्बिग्ग
 आयागाय

६७—न मे रैर व कुप्पिग्ग
 बोव क्खुं न क्खिप,
 पडिसेहिजो परिणमिग्ग,
 एव मीण सम्युपासिग्गसि

से क्या प्रयोजन ? देख (ये भोग्य वस्तुएँ भी
सुम्हा शान्ति के लिए) पर्याप्त नहीं हैं ।

हे पुरुष । फिर सुम्हें इनसे क्या प्रयोजन ?

हे मुनि । इस (भोगों में) देख ।

५४—(विषय भोग के लिए) किसी भी प्राणी
की हिंसा मत कर ।

५५ जो पुरुष समय में सेदसिन्न नहीं होता, वही
वीर और प्रशस्तित है ।

५७—'मुझे नहीं देता' इस विचार से मुनि को
कोप—क्रोध—नहीं चाहिए । थोड़ा प्राप्त होने पर
मुनि की निन्दा न करे । मना कर देने पर मुनि
लौट । इस मुनि मीन की—संयम
की— धना करे ।

५८—अभिषि

सत्येहि डोगस्त

कर्मसमाख्या कर्मवि कर्मदा—अप्यजो से
 पुत्राय पुत्राय सुपुत्राय नाईय धार्म्य राईय
 दास्य दासीय कर्मकर्तव्य कर्मकर्तव्य
 आस्त्यापुत्रो पद्मेयाय सायासाय पायरासाय
 सतिदिसनिचयो कर्म ।

अथेगेसि मायबाण मोय्याय

५९—सद्युदिय

अजगारे

आरिय

आरिचकने आरिचईसी अमसविधि अदकनु

५८—लोगों द्वारा व शस्त्रों से कर्म-समारम्भ किये जाते हैं। जैसे कि मनुष्य अपने लिए, पुत्र, पुत्रियों, पुत्रवधुओं, आत्मीय जनों, धात्रियों, दास, दासी, ही और अतिथियों के लिए अपने मिन २ सम्बन्धियों के मेजने के लिए तथा और प्रात के मोजन के लिए सन्निधि और सन्निधय है।

(इस तरह) ससार में ॐ ऐसे मनुष्य हैं, जिनके मोजन के लिए (कर्म- किये जाते हैं) ।

५९—संघम में समुत्थित—ससमी, आर्य, और आर्यदर्शी यही सन्धि है—निर्जाति आहार पानी पाने का ठिकना है—यह देसनेवाला ही ।

६०—ये नारीय नाह्यावय स समणुबाण्य

सञ्चामाय पटिन्नाय, निरामाद्यो
परिक्खय ।

६१—अदिल्लमाने कयपिक्कण्ठु,

सेय किये न किय्यावय कियत्तं स

६२—ये मिकखू काळन्ने शाळन्ने भावन्ने
केयन्ने कयपन्ने विजयन्ने ससमयपरत्तसवन्ने

३०—यह अकल्पनीय आहार ग्रहण न करे, न कावे और न करनेवालों की अनुमोदना करे ।

सर्व अप्रहमीय को खानकर ग्रहणीय पर जीवन चलावे ।

३१—अन्ततः इत्य-विक्रय में अरुह्यमान् ह्ये—उससे दूर रहे ।

वह न , न दूसरे से खरीदवाये और न खरीदता ही उसे जाने ।

३२—जो मित्र (मित्रा के को जानने) , (मित्रा देनेवालों को शक्ति को जानने) , (मित्रा के को जाननेवाला) , (मित्रा-प्राप्ति के दण—अपसर—को जानने-वाला) , विनयल (मित्रा के को जाननेवाला) ,

मायान्ते परिग्राह्य अतमायमाने काकानुग्रह
अपठिष्ये, बुद्धयो ज्ञेया निवाह ।

६१—बल पठिग्राह्य अथवा पावपुत्रज
साध्य न कदास्य यस्तु येन वापिष्या

६४—अथे आहारे अथवातो माय
वापिष्या

कानुति न मन्त्रिणा
अकानुति न सोइया

स्वसमयपरसमयज्ञ—(स्व-रि और पर-रि
 को जाननेवाला) और (दूसरे के अभिप्राय
 को जाननेवाला) होता है, जो परि में—भीषोपभोग
 सामग्री में— नहीं करनेवाला होता है, जो यथा-
 काल अनुष्ठान करनेवाला होता है, जो प्रतिज्ञ नहीं
 होता वह राग-द्वेष को छेद कर मोक्ष मार्ग में आगे
 है ।

६३—मिश्र . प्रतिग्रह—पात्र, . पाद-
 पुत्रनक—रजोहरण, — —
 और आसन—गृहस्थों से याच ठे ।

६४— लब्ध होने पर —कितना
 लेना यह—जाने ।

मिश्र मिष्टा मिलने पर गर्व न करे ।

न मिलने पर न करे ।

क्वपि क्व न सिद्धे
 परिगृह्यतो अप्याय अपसक्तिञ्चा
 अप्यहा न पासद परिहरिञ्चा
 यस मनो वापरिपदि परोक्ष
 बहिष्य कुसले मोषक्तिपिञ्चाधि
 १५—कामा दुरतिक्रमा, कीर्तिर्न दुष्पति-

भूयः

कामकामी क्व नु अप्य पुरिसे,
 से सीवद क्वरे तिप्याह किहू परितप्याह

१६—आवयययसू, कोगनियस्वी कोगस्त
 अहोमत्त वाप्य क्वहू भाग वाप्याह विरिष
 भाग वाप्याह

अधिक मिलने पर संग्रह न करे ।

वह परिग्रहते आत्मा को दूर रखे ।

या देखता हुआ (मूर्छा का) परिहार करे ।

यह मार्ग आर्यो तीर्थंकरों प्रवेदित है ।

इसमें पुरुष कर्मबन्धन से लिप्त नहीं होता ।

६५—कामनार्थ दुरतिक्रम हैं— पार
बुध्कन है । यह जीवन कदाया नहीं जा ।

यह कामकामी—काममोग की करनेवाला—
पुरुष निश्चय ही शोक है, विलाप है, मर्यादा
से व्रष्ट हो है तथा दुःखी और होता है ।

६६—जो बु—दीर्घदर्शी और लोकदर्शी—
लोक की विभिन्नता को देखनेवाला है वह लोक के
अधोभाग, सध्व्यभाग, और तिर्यांभाग को समझने
को—जानता है ।

६७—गङ्गा छोट अणुपरिवृत्ताये

६८—सधि विद्वता इह मन्त्रिभि
 पठ परि पठतिष्ठ के बन्ने पठिमीय

६९—बहा भवो वरा बाहि
 वरा बाहि वरा भवो
 भवो-भवो पूरवेहवराणि पास्य
 पुत्रोपिसन्ताह वंतिष्ठ पठितेश्य

७०—वे मद्य परिन्वाय सा च ह्वा
 पचासी

६७—वासना में वृद्ध मनुष्य इस सप्ताह में परि
करते हैं ।

६८—इस मनुष्य-जन्म में संधि —
का — जो कर्मों से बद्ध आत्मप्रदेशों की
मुक्त है वही वीर और प्रज्ञा का पात्र है ।

६९—यह शरीर जैसा अन्दर से है वैसा ही
से है । और जैसा से है वैसा
ही से है ।

ज्ञानी देह के की अशुचि तथा
करते देह के मिन्न-मिन्न मल-धारी को देखता है ।
पण्डित यह सब देख, शरीर के वास्तविक को
समझे ।

७०—बुद्धिमान् यह लार घूसनेवाला न
हो—स्थाने हुए मोग पदार्थों का प्रत्याक्षी फिर से
उभकी करनेवाला न हो ।

मा सेषु विरिच्यमप्यायमावाचय

७१—आसक्तसे अस्तु अर्चं पुरिते बहुमादे

करोय मन्त्रे, पुत्रो व करोय कोह

वेद बहुदे अप्यनो

अमिर्षं परिकल्पिष्यह इमस्तु वेद
परिवर्णय्याप

अमरावह महासवाही

अहमेवं तु वेदाय अपरिष्याप क्वह

से व आणह अमर्षं वेदि ।

वह अपनी मीम-विमुक्त । को फिर से मोगों में
आसक्त न होने दे ।

७१—निश्चय ही मोग और कषाय में पुरुष
अत्यन्त मायावी होता है ।

अपने ही कियो से मूढ़ मनुष्य पुनः विषयभोग का
लौभ है ।

विषयलौभी मनुष्य अपनी आत्मा के प्रति वैर
है ।

यह जो बार-बार है वह की वृद्धि
के लिए । है ।

विषयों में अत्यन्त रसनेवाला मनुष्य अमरवत्
आ । है ।

यह बाद में अपने की आर्त—दुः दैत प्राण
का भर्त्स नहीं हुआ केवल क्रन्दन । है ।

इसलिए जो मैं कहता हूँ उसे जानो ।

७२—वेदेषु पठिष्य पयवमायै से हवा
 विद्या मिथा सुपइथा विदुषइथा ज्यइथा,
 नक्त करिस्त्वामिदि मन्वमाये

वस्सवि य न करे

वक्त वाकस्व समिथ

जे वा से कारइ वाक्के,

न पव जपगारस्व ज्ञायइ

(सु० १ अ० २ व० ६)

७३—से व सधुम्नमायै आयायीव
 ससुत्वाय वन्धा पावकम्भ नेव कुम्भा न
 कारयेन्वा

७२ कई अपने को चिकित्सा में पण्डित कहते हैं ।
पर वे ने नहीं किया वह करूँगा ऐसा मानते हुए
, छेदन, मेदन, ग्रन्थछेदन, उच्छेद और
करते हैं ।

ऐसे चिकित्सक जिसकी चिकित्सा करते हैं, (
दुप होसा है) ।

ऐसे मूर्ख की सगत से क्या लाभ ?

जो ऐसे चिकित्सक से चिकित्सा कराता है वह भी
मूर्ख है ।

सच्चे की चिकित्सा ऐसी नहीं होती ।

७३—वह आदिय को—संयम को— ससमे
समुत्थित हुआ है । इसलिय स्वयं प न करे
और न दूसरे से करावे ।

७४—सिवा त्वं प्यारं विष्णुसहस्र
 नामान्तरं हि जगद्

७५—सुखी साधुमात्रे, सख्यं तुल्येन
 मूढे विष्णुवासुदेवे

७६—सधनं विष्णुमायं सुखी भवं पदुम्बर

७७—संसिद्धे पात्रा पञ्चदश

७८—सखिसेवा नो निरुत्तराया, यत्
 बलिना पदुम्बरं कर्मोत्सवी

७९—स ममाद्यमई जगद् से जगद्

७४—कदाचित् कोई छ में से किसी एक का समारम्भ है, वह छ कार्यों में से प्रत्येक का आरम्भ करनेवाला माना है।

७५—विषय का अर्थी मनुष्य हुआ कृत पाप कर्म से मूढ़ बन दि को प्राप होता है।

७६—जीव अपने छ से भिन्न-भिन्न जन्मान्तर है।

७७—जिसमें ये प्राणी व्यथित हैं, (वह संसार स्वयंकृत छ है।)

७८—यह मुमुक्षु न करे। इसे छ परिष्ठा—दिवेक है और इसी से कर्मोपशान्ति होती है।

७९—छी ममत्त्व को छोड़ता है वह परिग्रह छी

समाह्वय । वे इ विदुमहे शुनी, जस्य नखि
अमाह्वय

८०—सं परिनाय मेवापी विज्ञा डोपं
अवा डोगसज्ज वे मस्य परिष्कमिञ्चासि पि
वेमि

८१—नाय सहरं वरि
वरि न सहरं रवि
अवा अविमये वरि
अवा वरि न रज्ज

८२—अरे अरे अदिनासमाये निम्बिह
नदि इह जीपिबस्य

छोड़ता है। जिसके परिग्रह नहीं हैं, वही मुनि दृष्टिपथ को—ज्ञानादिक मोक्षपथ को—देसनेवाला है।

५०—यह जानकर मेधावी (ममत्त्व बुद्धि को छोड़े)।
बुद्धिमान लोक के स्वरूप को जान कर तथा लोकसहा
को छोड़कर संयम में पराक्रम करे। यही मैं कहता हूँ।

५१—वीर पुरुष संयम में अराति को सहन नहीं
करता और न असयम में एति को सहन करता है।
चूंकि वीर पुरुष संयम में अन्धमनस्क नहीं होता, अतः
असयम में भी अनुरक्त नहीं होता।

५२—शब्द और स्पर्श को अच्छी तरह करता
सुखा, सुसुख इत सप्तर में असयम-जीवन में आनन्द-
भाव की घुणा को से देखे।

१२८

आशादास के चरण

८३—शुधी मोम समावाय, शुधे
कम्यसपीरा

८४—पठं क्क सेवदि, बीरा सम्मच
दसिप्यो

८५—दस बोह्वरे शुधी सिज्जे शुधे विरय
विवाहिर ति वेमि

८६—शुधुसुधुनी जनावाय, शुधुवर गिडाह
वचय

(१० १ १० २ १० ३)

८३—मुनि मौन को— से सम्पूर्ण उदासीन
भाव को—ग्रहण कर कर्म शरीर को धुन डाले ।

८४—समदर्शी वीर —नीरस और रुद्ध मौजान
का सिद्धन करते हैं ।

८५—ऐसे ही मुनि को तिरते हैं । वे
ही उत्तीर्ण, और विरल कहलाते हैं । ऐसा मैं
हूँ ।

८६—अनाहा से चलनेवाला—स्वच्छन्दता से वर्तन
करनेवाला—मुनि मोक्ष-गमन के योग्य नहीं होता ।

ऐसा सुद्ध मुनि यथार्थ प्ररूपणा करने में
हियकिचाता है ।

८०—एतन्निरे पञ्चसिद्ध

अथैव क्रियेत्तन्मोग

एतन्नाप पञ्चसिद्ध

८८—न ह्यस्य पञ्चसिद्ध इह माण्ड्याज तस्य
ह्यस्यस्य ह्यस्यता परिष्काराद्वाहन्ति

८९—इह कर्म परिष्कार्य अथसो

१७— (जो मुनि के अनुसार है वह सिद्धान्त की परीक्षा करने में नहीं हिचकिचाता ।)
ऐसा मुनि ही वीर है और वही प्रशस्त है ।

मुनि लोकसयोग की—वन आदि और राम
दोषादि अन्तर की—अधिक्रम है ।

लोकसयोग का अर्थ करना ही न्याय—सन्मार्ग
—मनुष्यों का आचार—कहा गया है ।

१८—इस ससार में मनुष्यों को जो दुःख गया है, वृ पुरुष उस दुःख को वह परिज्ञा द्वारा जानकर प्रत्येक परिज्ञा द्वारा उसका करते हैं ।

१९—यह दुःख स्वकर्मकृत है, यह जानकर करने, कराने और अनुमोदन रूप से द्वार—दुःख सत्पत्ति के निवृत्त्यर्थ, अत्र, और योग का निषेध करे ।

६०—से अयन्नवसी से अयन्नारामे
ने अयन्नारामे से अयन्नवसी

६१—यहा सुय्यस्त कय्यइ उहा सुय्यस्त
कय्यइ
यहा सुय्यस्त कय्यइ उहा सुय्यस्त
कय्यइ

६२—अधि व इणे अयाहवसाणे

इव पि आन सेवधि मरिचि

१०—जो अनन्यदर्शी है—जिसकी जिन वसाए
 तत्त्वार्थ के वि दृष्टि नहीं—वह अनन्यारामी
 है—वह' र्थ के सिवा - वि -
 रमण नहीं । जो अनन्यारामी है—परमार्थ के
 सिवा अन्यत्र नहीं —वह अनन्यदर्शी—
 दृष्टि है ।

११— र्थ जिस पुण्यवान् को धर्म
 का उपदेश देते हैं, उसी को भी । और
 जिस को धर्म कहते हैं उसी पुण्यवान्
 को भी ।

१२— है अपने की मान साथ
 की ।

ऐसा भाव उत्पन्न करनेवाली धर्म-कथा में श्रेय नहीं
 है, यह जानो ।

६१—कैव पुरिसे क व न्य

६४—एस बरि फससिपु, जे बहू परिमोचय

६५—बुद्ध बहू विरिय विद्याहु
से सम्बन्धो सम्ब परिजाचारी
न किण्णइ जणपण्य बरि

६६—से मेहावी अणुत्तायण्णोपण्णे
जे व बन्धपुक्क मग्गेसी

६७—कुण्ठे पुण नो बहू नो मुक्के

६८—से न व भारमे न व नारमे

१३—यह पुरुष कौन है, किसकी
है (यह जान कर उपदेश दो) ।

१४— वीर है और त है जो कर्मों-से बंधे
इस को मुक्त है ।

१५—सर्व, अधी और सर्विक विज्ञा में जो भी अस
और प्राणी हैं, मुमुक्षु उनके प्रति में
सर्वपरिहाचारी होता है—विहित और सवरपूर्वक
है (ऐसा वीर हिता में नहीं होता ।

१६—जो पुरुष से मुक्त होने का
सोजता है, वही मेधावी और कर्मों को विदीर्ण करने में
निपुण है ।

१७— पुरुष न तो बद्ध है और न मुक्त ही ।

१८—सर्वज्ञ पुरुषों ने जो किया, करे ।
उन्होंने जो नहीं किया, साक्षक भी उसे न करे ।

अभास्य च व आरमे

६६—अर्ष अर्ष परिण्वाय

सोगसन्न च सन्नसो

(सु० १ अ० २ उ० ६)

जो क्षान्तियों द्वारा अनारब्ध रहा है, उसे साधक न करे।

१९—हिंसा और हिंसा के कारणों की तथा लोक सहा की जानकर उनका त्याग करे।

सीयोसिचिन्म

- १-सुवा अशुषी, सधा सुषिजो आगरवि
- २-डोपसि बाध अशियाय सुष्वा
- ३-समय डोगस्स बाजिटा, इव
सत्तोवरए
- ४-अस्सिमे सहा य रथा य रसा य
गंथा य फासा य अविस्समन्नागया
भवदि से आवध, नावध, नैयव
अस्सए वमए
- ५-पन्नाजेहि परिवाणइ डोव सुषीदि
सुष्वा

सीतोष्णीय

१—अमुनि—अज्ञानीजन—सुख होते हैं मुनि
सदा जागते हैं ।

२—लोक में दुःख सबकी अहित कर जानो ।

३— के को उनके
से—हिंसा से—विरत हो ।

४—जिस पुरुष को शब्द, रूप, रस, गंध और
—इन विषयों का मलीभ्रंश होता है
वही आत्मवित् (आत्मज्ञ), ज्ञानवित् (ज्ञानी),
वेदवित् (वेदज्ञ), धर्मवित् (धर्मज्ञ) और ब्रह्मवित्
() कहलाता है ।

५—जो प्रज्ञा के द्वारा लोक के को अच्छी
है, वही मुनि है ।

१-वसुधैव कुटुम्बकम्

आयतुसोप

सुगमनिजागई

५-सीवसिष्यन्वाई से निजावे
परपरइसो, फलसव सो वेपय

८-जागरवेरोवरय

९-वीरि एव हुक्का पदुक्कासि

१०-अरामचुवसीवजीव नरे सवय मुते
वर्म मा निजागई

६—धर्मज्ञ और सरल मुनि आदर्श और स्त्रोत-
संग को अच्छी तरह जानता है ।

७—शौचीष्ण रथागी—सर्दी गर्मी में रसने-
वाला वह निर्ग्रन्थ अरतिरति—धर्म में अरति और
सकर्म में रति उत्पन्न करनेवाले प्रसंगों को
हुआ—उनमें है । किन्तु ही कठोर
परिष्क कर्तव्य न था पड़े, उनमें कष्ट नहीं ।

८—निर्ग्रन्थ सदा और वैर विरोध से निवृत्त
रह (है) ।

९—ही वैर । ऐसा कर वृ दुस्ती से हो सकीता ।

१०—अरा और भूष्य के क्या हुआ मूठ
मनुष्य धर्म को जानता ।

११—वासिष्ठ आठरपाणे अण्मस्यो
परिवार

१२—भवा य मय्य पास

१३—आरयज हुक्कमिनिदि यन्वा

१४—साई पमाई पुण य्य गण्य

१५—इवेइमाणो सदहवेहु अण्
मादाभिसकी मरणा प्पुण्य

१६—अण्मस्यो कामेहि
अवरणो पावकमेहि
परि आयाण्णे केपले

११—कष्ट से आतुर प्राणियों को देखकर हो
सयम कर ।

१२—हे मतिमान् विचार कर सब देख ।

१३—यह सारा दुःख आरम्भज—हिंसात्मक कार्यों
से ही उत्पन्न—हे, यह उनसे निवृत्त हो ।

१४—मायावी और प्रमादी मनुष्य पुनः-पुनः गर्मवास
करता है ।

१५—शब्द और रूप आदि विषयों में उदासीन,
सरल और से डरनेवाला पुरुष मृत्यु से
घुटकारा पा है ।

१६—जो शब्द रूपादि कामभोगों में अग्रभादी होता
है, जो पाप कर्मों से निवृत्त होता है वीर,
गुणात्मा और सेदक है ।

१७—जे पञ्चवज्रापसत्पत्त केयप्ये-
 से असत्पत्त केयप्ये
 जे असत्पत्त केयप्ये
 से पञ्चवज्राप सत्पत्त केयप्ये

१८—अकम्पस्त वनहारो म विज्ज

१९—कम्पुणा ववाही वाथा

२०—कम्प व पडिठेहाए
 कम्प मूळ व ह्य पडिठेहिए
 सज्ज समावाच होहि अन्तेहि
 अदिस्वमाथे परिष्कमिवासि

२१—विहवाळोग ववा डोगसन्न से मेहावी

(म० १ अ० ३ व० १)

१७—जो शब्दादि विषयों की से जनित
हिंसा को जानता है, वह संयम को है। जो
संयम को है वह शब्दादि की से
उत्पन्न हिंसा को ज है।

१८—कर्म रहित जीव के व्यवहार—सत्कार में जन्म
मरणादि रूप व्यवहार—नहीं होता।

१९—कर्म से ही उपाधि उत्पन्न है।

२०—कर्म के स्वरूप को जा , कर्म की जब
हिंसा को जानकर, सब उपाय ग्रह कर दोनों अंतों—
राग-द्वेष—से दूर रह मेधावी संयम में करे।

२१—लोक के स्वरूप को जान जो लोक का
परित्याग करते हैं, वे मेधावी हैं।

२२—आइ च दुर्द्धि च इहञ्च पासे,
 मूर्च्छि आमे पच्छिह साव ।
 वन्दाऽदिविन्ने परमवि यन्वा,
 सम्पददसी न क्से पाव ॥

२३—अमुच पाव इह मन्विपरि,
 आरम्भतीषी समयाणुवसी ।
 कालेह गिहा निचय क्त्वि,
 सधिव्यमाणा पुनरिवि गन्ध ॥

२४—अवि से हासमासव,
 इवा मदीवि मन्नाई ।
 अह वाहस्य धीम,
 वेर वद्वेय अण्यो ॥

२२—हे * । में और जरा को देख ।
विचार कर जान—सब प्राणियों को प्रिय है ।
इसीलिए ज्ञ सम्यक्दृष्टि परमार्थ को पाप
कर्म नहीं ।

२३—इस में मनुष्य के साथ मोह- का
छेदन कर । , हिंसाजीवी और इस लोक तथा
पर लोक में विषय-सुखों की करनेवाला होता है ।

-भोग में गुद जीव कर्मों का करते हैं । और
जो कर्मों का संचय करते हैं वे बार-बार गर्भावास करते
हैं ।

२४—पापी मनुष्य हंसी विनोद के वशीभूत हो
का है और इसे क्रीड़ा कर
है । ऐसे अज्ञानी मनुष्य का सत्सर्ग
सचिद । वह वैर ही है ।

२५—सन्नाऽतिविजो परमति जन्वा,
 कावचदसी न करे पाद ।
 जन्वा च मूक च विनिव धरि,
 पठिच्छिवाय निरन्मदसी ॥

२६—एत मरणा पमुच्यद्

२७—हे इ दिङ्मय मुनी

२८—डोगसी परमदसी विविचनीधी
 उदसति समिद सहिए सवा सवे
 काककनी परिणय

२५—आत्मदर्शी विद्वान्—पापों से मय साने

—परमार्थ को जान कर पाप नहीं ।।

हे धीर पुरुष । तू मूलकर्म और अग्र कर्म को आत्मा से
विनि कर । इस संसार—वृद्ध के मूल और
अग्र को छिन्न कर तू निष्कर्मदर्शी—निष्कर्म आत्मा को
देखनेवाला—धन ।

२६—यह पुरुष—मूलकर्म और अग्रकर्म को छिन्न
करनेवाला पुरुष— से मुक्त हो जाता है ।

२७—वही मुनि संसार के भय को देखने होता
है ।

२८—लोक में धर्मदर्शी, एकान्तसेवी,
समितियुक्त ज्ञानवान् मुनि में सदा यत्नवान् हो
की अपेक्षा हुआ जीवन चहन करे ।

- २९—बहुं च कण्डु पाप कम्प पण्ड
सम्पन्नि विद् कुम्भदा
- ३०—युवोवदय मेहापी सम्प पाप कम्प
मोसह
- ३१—अभोगचिसे कण्डु अय पुरिसे
- ३२—से अण्यवहाय अण्यपरिवाहाय
अण्य परिवाहाय
अण्यवयपरिवाहाय अण्यवयपरिवाहाय
- ३३—से केवण अरिहय पुरिहय
- ३४—अरसेविचा यज्जह इण्णेवेगेसमुद्धिवा

२९—निश्चय ही मैंने आसक्तिवश पाप कर्म किये हैं—ऐसा सोचकर सत्य में धृति कर—दृढ़ ही ।

३०—सत्य में रत युद्धिमान् मनुष्य सर्व पाप कर्मों का ह्य कर देता है ।

३१—निश्चय ही मनुष्य बहुचित्तवान् है—वह विविध कामनाएँ है ।

३२—इन दुष्पूर आँ की पूति के वह दूसरों को मारने, दूसरों को दुःख देने, उन्हें अपने अधीन करने, जनपदों को मारने, जनपदों को परित्याप देने और जनपदों को अपने अधीन करने के लिए तैयार है ।

३३—जो इस चित्त की आँ को पूर्ण करने की है वह चलनी को जल से है ।

३४—इन सब भोग्य आँ का आसेवन करनेवाले

सन्दा उ विद्म नो सेवे विस्तारं
पासिह नाणी

३३—इधवाय वधय्य जन्वा,
वजय्य वर माह्वये।

३४—से न ज्ञणे, न ज्ञयावय, ज्ञयतं
नामुजाणद।

३५—निष्पिह मीदि, जरय पवाह्यु

३६—धनोमदसी
निसय्ये पावेदि कम्मोदि।

३७—ओहाइमाणं इगिवा य वीर।
ओमस्व पासे मिरव महन्व,

भी कई उन्हें छोड़ संयम के लिए हुए हैं। अतः
 ज्ञानी उन्हें निस्सार देख दूसरी बार सेपन
 न करे।

३५— प्राणियों की तो बात ही क्या देखों सक
 के और —जन्म और मरण—जान कर
 मुनि। मैं—संयम में—विचरण कर।

३६—मुमुक्षु किसी जीव की हिंसा न करे, न करावे
 और न हिंसा करते हुए का अनुमोदन करे।

३७—विषयानन्द से घृणा कर। स्त्रियों में तु
 मत ही।

३८—मुमुक्षु उच्चदर्शी ही और पाप कर्मों से
 विरत ही।

३९—वीर पुरुष अति क्रोध और मान का हनन
 करे। वह लोभ का फल महान् नरक देखे। अतः वीर

उन्हा व वरि विरय बहाय,
विपिज्य सोब सुसुयगामी ॥

४०—वाय परिण्वाय इहज्ज । वरि,
सोब परिण्वाय वरिज्ज व्दि ।
वन्नाज्ज ज्हुं, इह मायवेदि,
नो पाणिय पाणे समारभिज्जाधि ॥
(सु० १ अ० ३ व० २)

४१—उधि डोयत्त आणिया

४२—जायणी वरिया पास
उन्हा न इवा न विपावय

पुरुष पाप का फल देख दृष्टियों से हलका बन वध—हिंसा से विरत हो और कर्म-स्रोत का छेद कर सके ।

४०—धीर पुरुष ग्रन्थि और शीत—संसार प्रवाह—
के को ही से इन्द्रिय-
हुआ विचरे । उन्मज्जन प्राप्त कर धीर पुरुष को इस
मनुष्य जीवन में प्राणियों के प्राणों का —हृन्त
—नहीं चाहिए ।

४१—मनुष्य नर-भव को जानकर (न करे) ।

४२—दूसरे प्राणियों को आत्मतुल्य देख ।
अतः किसी भी प्राणी की हिंसा न कर, न दूसरे
से करा ।

४३—अस्मिन् अन्वयमन्वयविविधित्वात्
पठितेहाय न करेत् पाठ कम्प
किं क्त्व गुणी कारणं स्यात् ?

४४—समयतस्तुवेहाय अन्वयं विन्दसावप

४५—अपन्नपरम नाणी, नो पमात्
क्याइवि

४६—आयगुप्ते स्यात् कीरि, आयाभावात्
आवप

४७—विरागं ह्येहि गच्छित्वा
माया सुस्पदि च

४३—यदि कोई एक दूसरे की लज्जा से या भय से पाप कर्म नहीं करता तो इसका कारण क्या उसका मुनित्व है ?

४४—वहाँ—जहाँ पाप कर्म से बचने का प्रश्न हो वहाँ—धर्म का विचार कर अपनी आत्मा को प्रसन्न रख ।

४५—ज्ञानी, जिसे आत्मसाधना के सिवा अन्य कुछ परम नहीं, कर्मों नहीं ।

४६—आत्मगुप्त पुरुष सदा वीरभाव से के निर्वाह के लिए मात्र से जीवन-निर्वाह करे ।

४७—महान् या बुद्ध—सब रूपों में—विराग भाव रख ।

४८—आपद् नर परिभ्राम दोषिणि
 अविहिं आदिस्त्रभाणेहिं से न
 दिग्बद्ध, न मिग्बद्ध, न उग्बद्ध, न
 इग्बद्ध कर्णं सम्प्रबोध

४९—अक्षरेण शुक्ति न सरति को,
 किमस्त्र वीथ १ किं वा अगमिस्त्र १
 आसति को इह मायवाधो,
 अयस्त्र वीथ समागमिस्त्र ॥
 आर्षेयसद् न ए अगमिस्त्रं,
 अद् नित्यकवि बह्मजवा व ।
 विद्वयकमे एवाभुवस्त्री,
 निष्प्रोसहृता कपो महेसी ॥

४८—गति सि को कर जिसने दोनों ही अन्तों—राग और द्वेष—को छोड़ दिया है वह सारे लोक में किसी के द्वारा नहीं होता, नहीं होता, दाघ नहीं होता और न निहत होता है ।

४९—इस जीव का अतीत क्या था ? भविष्य क्या है—इस मृत और भविष्य का कितने ही विचार ही नहीं करते ।

कितने ही कहते हैं इस संसार में जीव का जो अतीत था वही भविष्य है ।

त अतीतार्थ को—अतीत के र भविष्य होने की बात को या भविष्यार्थ को—भविष्य के अतीत होने की बात को स्वीकार नहीं करते । अतीत या भविष्य कर्मों के ही होता है, यह कर पवित्र आचरणयुक्त महर्षि कर्मों को धुन कर दाय कर ।

१०—का अरुं के आर्यदि
इत्यपि असादे चरे

११—सम्ब हास परिवन्ध,
आसीनगुचो परिवन्ध

१२—पुरिषा । तुममेव तुम निच
कि बहिया निचमिच्छति ?

१३—न आभिजा क्वाकश्य
त आभिजा क्वाकश्य
न आभिजा क्वाकश्य
त आभिजा क्वाकश्य

१४—पुरिषा । अचाकमेव अमिषियिष्य
एव तुमका पशुवति ।

५०—ज्ञानी के लिए अरति क्या है और क्या है ? वह हर्ष-शोक के दि में अनासक्त रह समय में विचरे ।

५१—साधक सभी प्रकार का छोड़ कर मन, , काया को गोपन कर का करे ।

५२—हे पुरुष ! तू ही तेरा मित्र है । क्यों मित्र की झोज कर रहा है ?

५३—जिस पुरुष को विषयों के सग को दूर करने-वाला समझो, उसकी मोक्ष प्राप्त करनेवाला चाहिये । जिसकी मोक्ष प्राप्त करनेवाला समझो, उसको विषय का सग दूर करनेवाला सम चाहिये ।

५४—हे पुरुष ! अपनी आत्मा का ही निग्रह कर । ऐसा करने से तू दु-खों से छुट ।

१५—पुरिषा । सक्मोष सममिजाष्यादि
सक्चस्त जाष्याय से त्वद्विद् मेहावी
मार तच्छ ।

१६—सद्विषो यन्ममायाच सेव
सामणुपस्वम्

१७—दुहवो वीचियस्त परिषत्पयाज्ज
पूषजाञ्ज अक्षि एषो यमाचति

१८—सद्विषो दुक्कामवताय पुष्टो वो
कम्हाय ।

५५—हे पुरुष ! सत्य को ही अच्छी ।

जो सत्य की में उपस्थित होता है—जो
की घना में सदासी होता है - वह मेघावी मार—
को तर है ।

५६—सत्य से पुरुष धर्म को कर श्रेय
को अच्छी देखता है ।

५७—राम और द्रुपद वश मनुष्य हस जीवन के लिए
पर्व , और पाने के लिए पाप कर्म
! है और ऐसा करने में कितने ही का
करते हैं ।

५८— श्रु भी दुःख से होने
पर न छवराये ।

१६—पाणिम वक्षि लोकालोकाववाचो
सुखम्

(सु० १ अ० ३ व० ३)

१०—हे वता कोह च माय च माय च
कोय च

११—आवाप निसिद्धा सगडभि

१२—जे का आण्ड हे सख आण्ड
जे सख आण्ड हे या आण्ड

१३—सखचो पमचस्त अथ
सखचो अपमचस्त नखि अथ ।

५९—देख । संयमी साधक लोक के प्रपञ्चों से मुक्त हो जाते हैं ।

६०—मुमुक्षु क्रोध, मान, और लोभ का करने उन्हें छोड़ने होता है ।

६१—कर्म-आ को रोक कर स्वकृत कर्मों का मेदन चाहिये ।

६२—जो एक को है, वह सब को है, जो सब को है, वह एक को है ।

६३—को—प्रमादी पुरुष को सब ओर से भय है ।
—अप्रमादी को किसी ओर से भय नहीं ।

१४—जे एा नामे से बहु नामे
जे बहु नामे से एा नामे

१५—बडा कौतुक खजोग जति घोरा
महाबाल ।
परेष पर जति नाचरुखति जीविस

१६—एा विगिचमाये पुढो विगिचइ ।
पुढो वि एा

१७—सङ्गी आचार्य मेहाणी

६४ जो एक को —जीतता है वह अनेकों को —जीतता है। जो अनेकों को नमाता— जीतता है वह एक को 1- जीतता है।

६५— के दुश्म को ज घोर साधक साप्ताहिक बघनों का कर— कर—संयमरूपी से यात्रा करते हैं। वे उत्तरोत्तर आगे बढ़ते जाते हैं और असयत जीवन को आकांक्षा नहीं करते।

६६—जो एकको क्षय है, वह एकाधिक को क्षय करता है। जो एकाधिक को क्षय है, वह एक को क्षय है।

६७—नीघाटी को अदावान् ही।

६४—जे एग नामे से बहुत नामे
जे बहुत नामे से एग नामे

६५—बटा डोगस्त सबोग जति पीरा
अहावाण ।
परेज पर अति नाचकंसति बीधिव

६६—एग विगिन्धमाने पुडो विगिन्ध ॥
पुडो वि का

६७—सही अणाय मेहावी

६४ जो एक को —जो है वह अनेकों को —जीतता है। जो अनेकों को नमाता— जीतता है वह एक को - जीतता है।

६५— कैं दुःख को ज घोर साधक साप्ताहिक बधनों का कर—त्यागकर—संयमरूपी से यात्रा करते हैं। वे उत्तरोत्तर आगे बढ़ते जाते हैं और मुड़कर असंयत जीवन को आकांक्षा नहीं करते।

६६—जो एकको क्षय है, वह एकाधिक को क्षय करता है। जो एकाधिक को क्षय है, वह एक को क्षय है।

६७—मे तत्त्व को जानकर श्रद्धावान् हो।

१८—डोग व बाजार कमिसेमेन्टा
कलुषोमय

१९—जलिय सत्य परेण पर
नलिय असत्य परेण पर

२०—जे कोइदही से माणदही
जे माणदही से मायादही
जे मायादही से डोगदही
जे डोगदही से पिण्डदही
जे पिण्डदही से दोषदही
जे दोषदही से मोइदही
जे मोइदही से गण्यदही
जे गण्यदही से कर्मदही

६८— धारा लोक को अकुतोभय
है—ऐसा संयममय जीवन यापन करे जिससे किसीको
भय न रहे ।

६९— एक से बढ़ कर एक है ।
अ —अहिंसा से बढ़ कर नहीं ।

७०—जो क्रोधदर्शी है वह मानदर्शी है, जो मान-
दर्शी है वह मायादर्शी है, जो मायादर्शी है वह लोभदर्शी
है, जो लोभदर्शी है वह प्रेम—रागदर्शी है, जो रागदर्शी है
वह द्वेषदर्शी है, जो द्वेषदर्शी है वह मोहदर्शी है, जो
मोहदर्शी है वह गर्मदर्शी है, जो गर्मदर्शी है वह
जन्मदर्शी है,

जे जन्मदही से मारदही
 जे मारदही से नरयदही
 जे नरयदही से तिरियदही
 जे तिरियदही से दुपसदही

७१—से मेहाधी अभिनिवट्टिजा कोह न
 मार्य न माय न छोम न पिण्ड न
 दोस न मोह न गर्भ न जन्म न
 मार न नरय न तिरिय न दुपस न ।

७२—दियलि कोवाही पासनास्त न
 विज्जद न मति विपेति

(सु० १ अ० ३ व० ४)

जो जन्मदर्शी है वह मारदर्शी है, जो मारदर्शी है वह नरकदर्शी है, जो नरकदर्शी है वह तिर्यकदर्शी है, जो तिर्यकदर्शी है वह दुःखदर्शी है ।

७१—इस देखनेवाला मेधावी पुरुष क्रोध, मान, लोभ, राग, द्वेष, मोह, गर्म, जन्म, तिर्यग्योनि एवं दुःख से निवृत्त होता है ।

७२—ब्रह्मा के उपाधि होती है या नहीं ?—नहीं होती ।

समघ

१—छे वेदि ते धर्वा ते व पशुपत्न्या
 ते व आगमिस्ता अरुदा मगवतो
 छे सन्धे एवमाश्नसति एव आसति
 एव पश्यादिति एव पश्यादिति
 सन्धे पाप्वा सन्धे मूया
 सन्धे वीषा सन्धे सदा
 न हंसव्या न अन्नावेयव्या
 न परिशिसव्या न परिजावेयव्या
 न अर्पेयव्या
 एत वन्धे इन्द्रे निद्वय सासप

समिन्ध कोप सेयज्जोहि पवेद्वय, व
 अदा-बद्धिपुसु वा अपुद्धिपुसु वा अपद्धिपुसु

स

१—मैं हूँ—जो अतीत, और भविष्य में होने वाले अदृष्ट भगवान् हैं वे सब ऐसा कहते, ऐसा बोलते, ऐसी करते और ऐसी करते हैं कि—

किसी भी भूत, किसी भी जीव और किसी भी सत्त्व को न मारना चाहिए, उस पर तन करनी चाहिए, (कृत दास दासी रूप से) पराधीन न चाहिए, और न उसको उपद्रव चाहिए।

यही धर्म शुद्ध, नित्य और त है

लोक को—जीव को जान कर सेद—
दूसरों के सेद—संताप—को समझने वाले—ज्ञानी
पुरुषों ने सन्निहित या अनुसिद्ध, उपनिषत्

वा अपुषद्विषु वा उपरवद्वेषु वा
 अपुषरवद्वेषु वा सोषद्विषु वा
 अपुषद्विषु वा सजोगरपुषु वा
 अपुषजोगरपुषु वा

उक्तं येन उहा येन
 अस्ति येन पुष्पवद्

२-उ आत्सु न निहे न निमित्ताये
 वापिषु वन्न अहा उहा

३-विहेदि विन्नेव गच्छिज्जवा
 नो जोगरपुषेस्य चरे

अस्तनस्ति इमा आर्हे अण्णा उस्स
 क्खोसिवा

या अनुपस्थित, हिंसा से विरत या अविरत, उपाधि सहित या उपाधि रहित, सयोगी या असयोगी—सब के लिए यही धर्म है।

यही धर्म वस्तु है, यही यथार्थ है। जिन में यही कहा है।

२—य ध्य धर्म को जा करने के बाद उसे न छिपावे और न करे।

३—रूपों में—विषयों में निर्वेद को—विरति भाव को प्राप्त कर।

लोकैवणा—लौकिक दि मोगों की न कर।
जिसके यह लोकैवणा नहीं है उसके पाप प्रवृत्तियाँ हो सकती हैं ?

४—शिवं सुय मय विष्णाय न पय
परिक्रमिष्ये

५—समेसाभा पठेसाणा पुनो पुनो वाह
पक्रमति ।

६—बहो न राधो न जवसाणे वरि
सवा

७—यमसे बहिया पास अण्मसे सवा
परिक्रमिष्यासि विषेभि

(जु० १ अ० ४ उ० १)

८—ये आसथा से परिस्रथा
से परिस्रथा से आसथा

४—यह जो ऊपर कहा गया है वह देखा, सुना, माना और विशेष रूप से जाना हुआ है।

५—जो मनुष्य संसार में आसक्त और क्लेशों में लीन है, वे बार-बार भिन्न भिन्न योनियों में खन्मन्तर करते हैं।

६—सदसह विवेकी पुरुष सदा धीर—अविचलित और रात दिन यत्नवान्—संयम में सावधान ही।

७—विवेकी पुरुष प्रमादी—असयति—को आशा के बाहर समस्त सदा अप्रमाद पूर्वक पराक्रम करे। यह मैं कहता हूँ।

८—जो आश्रय हैं—कर्म प्रवेश के दार हैं—वे ही अनुन्मुक्त अवस्था में परिस्रय हैं—कर्म प्रवेश को रोकने

जे अणसबा ते अपरिस्सबा
 जे अपरिस्सबा ते अणसबा
 एए एए सुकुम्भमाणे
 सोय च अणाय अमिसमिग्घा
 पुडो पवेइय

६—आचार्य नाणी इह माणवान् ससार-
 पडिबज्जाअ सुकुम्भमाणाय विन्नाअ
 पत्ताअ

१०—अणुविसेवा अणुवा पमत्ता

वाले हैं। जो परिस्रव हैं—कर्म प्रवेश को रोकने के उपाय हैं वे ही (सन्मुख में) हैं—कर्म प्रवेश के द्वार हैं। जो हैं—कर्म प्रवेश के नहीं हैं वे भी (अपनाये विना) सदा—कर्म प्रवेश के रोकनेवाले—नहीं होते। जो —कर्म प्रवेश के हैं—वे ही (रोकने पर) अनास्रव होते हैं।

पृथक्-पृथक् प्रवेदित इन पदों को समझनेवाला लोक को तीर्थंकर की से जान कर आस्रव से निवृत्त ही और सदा में प्रवृत्ति करे।

९—छानी पुरुष, ससारी होने पर भी जो मनुष्य सबुद्ध और विद्वान्-प्राप्त—विवेकशील होते हैं, उन्हें यह धर्म कहते हैं।

१०—है आर्ष और प्रमाथि मनुष्यो। मैं तुम्हें यथार्थ-

अराक्षन्वसिर्न विधेयि
 नाणात्मो मन्वुमुहस्य अल्पि
 र्पञ्चापनीया वक्षानिकेया
 काळगद्दीया त्रिधनविधिहा
 पुत्रो पुत्रो वाह पञ्चम्यति

११—इहमेवेति उक्त्य उक्त इत्यथो मन्वु
 अहोपचाय्य कासे पञ्चिधनमिति
 विह कन्नेहि कूरेहि विह
 परिधिह्य अविह कूरेहि कन्नेहि
 नो विह परिधिह्य

सच्ची बात है। मृत्यु के मुह में पड़े हुए प्राणी को मृत्यु न आये ऐसा नहीं हो । जो ओं के वृक्ष हैं, के निवास हैं, कालगृहीत हैं—समय पर पश्चात्पद हैं और जो रात दिन करने में निविष्ट हैं वे भिन्न-भिन्न जातियों में—जीव-योनियों में जन्म-जन्मान्तर करते हैं ।

११—जगद् में कितने ही लोगों को मानो नरकादि से गह्वर परि-सा होता है। वे बार-बार पाप कर्म कर नरक, पशु आदि योनियों में होनेवाले—दुःखों का प्रतिसंवेदन करते रहते हैं ।

अत्यन्त क्रूर कर्म से प्राणी अत्यन्त वेदनावाली योनि में उत्पन्न होता है। जो अत्यन्त क्रूर कर्म नहीं वह सतनी वेदनावाली योनि में नहीं जाता ।

१२—यने वयसि अहुवापि नाणी
माणी वयसि अहुवापि धने

१३—आवसि केयावती लोवसि समया
व माहणा व पुढो विवाय वयसि
से विहु व वे सुव व वे मय
व वे विष्णाव व वे उहु अह
विरिव विसाहु सम्बन्धो सुपडि-
केहिम व वे—सम्मे पाजा सम्मे
जीवा सम्मे सुधा सम्मे सत्ता
इत्तव्या अम्बावेवव्या परिव्या
वेवव्या परिवेत्तव्या अवेवव्या,
इत्वपि जाम्भ नस्वित्वा दीप्तो
अगारियवववमेव

१२—जो श्रुतकेवली कहते हैं वह ही केवलज्ञानी कहते हैं। जो के जानी कहते हैं वही श्रुतकेवली कहते हैं।

१३—इस ससार में अनेक श्रमण ब्राह्मण मित्र ही तर्क वितर्क करते हुए कहते हैं—“हमने देखा, सुना, मनन किया, विशेष भाव से और , अधो व तिर्यक् दिशा में सर्व प्रकार से पर्यालोचना की है कि किसी भी प्राणी, किसी भी जीव, किसी भी भूत, किसी भी सत्त्व को मारने, उस पर इकूमत करने, उसे देने, उसे दासदासी रूप में अधीन रखने और उसके प्रति करने में कोई दोष नहीं है - यह तुम जानो।”
पर यह मैं का है।

पुण्य निष्काम समय पतेव पतेव
 पुच्छिस्सामि, इमो पमाइया । कि
 मे साय हुक्क असाय ? समि-
 वा पकिवप्पे चादि एव पूया—
 सम्भेसि पायाय सम्भेसि मूयाय
 सम्भेसि बीयाय सम्भेसि ससाय
 असाय अपरिनिव्वाय महम्मय
 हुक्क ति वेमि

सत्य मे आरिया से एव ववासी
 --से हुद्धि व मे हुस्सुव व मे
 हुम्मय व मे हुम्भिप्पाय व मे उद्धं
 अह विरिय विसासु सम्पत्तो
 हुप्पदिजेदिय व मे, न व हुम्मे

पहले मिन्न-मिन्न दर्शनों के को

२ हैं—“हे वादियो । तुम्हें साता— —दु —
अप्रिय है या सा दु —अप्रिय ?”

१ देने पर—अर्थात् हमें दुःख अप्रिय है, सुख अप्रिय नहीं है उनके ऐसा कहने पर—हम उन्हें कहेंगे—तुम्हारी ही तरह सर्व प्राणी, सर्व जीव, सर्व भूत और सर्व सत्त्वों को सा—दुःख वेचन करने , महामय का और पीड़ा है। ऐसा मैं हूँ।

जो “हैं वे इस सम्बन्ध में ऐसा कहते हैं।
“यह तुमने देखा, । सुना, उल्टा
किया, रूप से । और , अथो
सिर्वाक् दिशा में पर्यालोचन किया है जो कहते,
बोलते, प्रशापित करते और करते हो कि किसी

एवमाहनाह एव भासाह एव पत्नेह
 एव पत्नेह—सन्ने पाषा सन्ने
 बीषा सन्ने मूषा सन्ने सत्ता
 इत्यन्वा अन्नावेयन्वा परिवारेयन्वा
 परिवारेयन्वा हरेयन्वा । इत्यपि
 आणह नत्तित्थ दोसो, अपारित्त-
 वयपमेव

एव पुण एवमाहनामो एव
 आधामो एव पत्नेमो एव पत्ता
 वेमो—सन्ने पाषा सन्ने बीषा
 सन्ने मूषा सन्ने सत्ता न इत्यन्वा
 न अन्नावेयन्वा न परिवारेयन्वा

भी प्राणी, जीव, भूत और को मारने, उस पर
 हुकूमत करने, उसे परिताप देने, उसे दास-दासी रूप से
 करने और उसे करने में दोष नहीं है, ऐसा
 जानो ।' ऐसा तुम्हारा कहना " है ।"

"हम तो ऐसा कहते, ऐसा बोलते, ऐसा प्रज्ञापित
 करते और ऐसी हैं कि किसी भी प्राणी,
 किसी भी जीव, किसी भी भूत और किसी भी सत्त्व को
 नहीं मारना चाहिए, उस पर नहीं करनी चाहिए,
 उसे परिताप नहीं देना चाहिए, उसे दासदासी रूप से

न परियावेयव्या न उद्वेयव्या
 इत्यपि बाणह नस्थित्य दोषो
 वायुरियवमप्येव

(सु० १ अ० ४ सू० २)

१४—उद्वेदि न बहिया य लोम से
 सम्बलोगमि जे केइ विष्णु
 अणुभीइ पास निमित्तचवडा
 जे केइ सवा पत्थि चरति
 मरा हुयवा मन्थविचरि मज्
 आरमज हुक्कमिणति जवा
 प्वाभाहु सम्मचरुसिपो

अवीन नहीं चाहिए और न उसके प्रति
चाहिये । इसी में दोष नहीं है ऐसा जानो ।

ऐसा करना—आर्य है ।”

१४—जो लोग धर्म से बाहर हैं—धर्म में विपरीत बुद्धि
है—उनके प्रति उपेक्षा भाव—मध्यस्थ भाव रखो ।
जो कोई विरोधियों के प्रति उपेक्षा भाव रखता है वह
सर्व लोक में विद्वान् है ।

जो भी प्राणी कर्म की छोड़ते—छोड़ने में समर्थ होते
हैं विचार कर देख, वे सब निधि —मन, वचन,
से हिंसा को छोड़ने वाले हैं ।

जो नर मृतात्मा—शरीर शृश्रुषा के प्रति मृतक,
धर्मविद और हैं, वे इस दु ल को —हिंसा—
से उत्पन्न जान कर उसे छोड़ते हैं ।
तत्त्वज्ञ ऐसा कहते हैं ।

न परिश्रमेण्वा न श्रमेण्वा
 ह्यसि वाप्यद् नस्त्वित्त्व दोसो
 वापरियववपसेव

(सु० १ अ० ४ व० १)

१४—इवेहि न बहिवा व डोगं से
 सम्पडोगमि जे केद् विष्णु
 अशुभीद् पास निम्निकचइडा
 जे केद् सवा पडिज क्यति
 मरा हुयवा सम्पविडदि मनु
 आरमज हुयवमिजति मवा
 एवमाहु सम्पचईदिणो

१५—ते सन्ने पावाद्या
 दुपसस्त कुसका
 परिष्णमुदाहरति
 इय कम् परिष्णाय सम्बन्धो

१६—इह व्यापक्यो पठिय अग्निहे
 पामप्याण उपेहाय पुणे सरीर

१७—क्येहि अप्याय
 करेहि अप्याय

१८—बहा कुनाह क्वाह
 इत्यवाहो पमात्यह
 एव अन्तसमाहिय अग्निहे
 विगिय क्येह अतिक्रमाने

१५—दुःख को समझने में कुशल वे सब प्रवादी
—सत्त्वदर्शी—इस कर्म को .—सब से
जानकर, उसके बंध की परिष्कार—वृद्धि—वतलाते हैं ।

१६—आज्ञा आराधना का आकांक्षी पण्डित पुत्र
आत्मा को अकेली समझ—शरीर से मिन —
अमोह भाव से शरीर को तप से धीम करे ।

१७—अपनी आत्मा को कृष करो—पतली करो ।
अपनी आत्मा को जीर्ण करो—शुष्क करो ।

१८—जिस तरह पुराने चूने लकड़ों को शोध
जलाती है, उसी तरह आत्मसमाहित—राग रहित और
क्रोध को छोड़ कर स्थिर धै—जीव के कर्म
को प्राप्त हैं ।

१६—इम निरुद्राख्य सपेहाय
 दुक्खं च जाय्यं बहु आगमेत्स
 पुणो फासाहं च फासे
 लोपं च पासं विस्वमारुचं

२०—ये निम्बुदा पावेहिं क्खेहिं
 कम्मियाणा ये विवाहिया

२१—उग्घा अट्ठिपिब्बो नो
 पक्खिसवत्थिआत्थिपि वेमि
 (सु० १ अ० ४ उ० ३)

२२—आवीरुय पवीरुय निप्पीरुय
 अहिया पुण्यसंयोग हिया कवसय

१९—इस मनुष्य-भव को आयुष्य
कर, क्रोधादि दुःखों के हैं अथवा मविष्य
में, पापी जीव भिन्न-भिन्न स्थानों में दुःखों का
करते हैं तथा लोक दुःख से रहा है, यह
देख कर, क्रोधादि पापों का परित्याग कर ।

२०—उपरोक्त बातें कर, जान कर, देख कर
जो पाप कर्मों से निवृत्त हैं वे अनिदान— रिक्त
की से दूर— सुखी कहे गये हैं ।

२१—इसलिये विद्वान् क्रोधादि से
को संख्यारि न करे—न जलाये ।
ऐसा मैं । हूँ ।

२२—सारे पूर्व संयोगों को त्याग एव इन्द्रिय-
सय रूप भाव को प्राप्त कर, आपीकृत कर,
निष्पोकृत कर—सप से आत्मा को उत्तरोत्तर तथा ।

२३—तन्हा अविमणे वीरे
 सारए समिप सरिप सया जप
 दुण्णुचरो ममो वीराण
 अमिअट्टायामीअ विगिअ
 मससोपिअ

२४—एअ पुरिसो वविप वीरे
 आयाअिअओ विमादिप
 ओ पुणाइ ससुअसअ
 वसिअ वअअेरदि

२५—निअोहि पअिअिअनोहि
 आयाअसोपगदिप वाओ
 अअोअिअनअअओ

२३—मुक्तिगामी वीर पुरुषों के मार्ग का अनुसरण करना कदा कठिन है, अतएव मास और शोणित को सुला कर वीर पुरुष मन की अरति को हटा, संयम में रहत हो, समितियों से युक्त रह, विवेक सहित सदा इस मार्ग पर यत्न रहे।

२४—जो ब्रह्मचर्य में वास हुआ कर्मों को धुनता है, वही वीर पुरुष समयी और अनुकरणीय कहा है।

२५—नेत्रादि इन्द्रियों के भोग्य पदार्थों से दूर होकर भी जो मूर्ख विषय-स्रोत में गूढ—प्रवाहित होता है, वह वास्तव में छिन्नवधन नहीं होता। वह संयोगी को पार

अपमिच्छसुखो
 समसि अभियागधो
 आत्माप उभो नखि सि वेमि

२१—वस्तु नखि पुरा पञ्चा
 मग्ने वस्तु कुबो सिवा १

२७—सेह पन्नाकमिठे बुद्धे
 आरमोवारए
 सममेवसि पासाह
 जेप कय बह पोर
 परियाव व दाकण

२८—पकिञ्चिदिय बाहिरणं व सोचं
 निवन्नापदी इह मच्चियहि

नहीं कर है और से अ में निमग्न है।
ऐसे मनुष्य को भगवान् की का लाभ नहीं होता।
ऐसा मैं कहता हूँ।

२६—जिसके पूर्व में और पश्चात् में नहीं है, उसके
मध्य में कहाँसे होगा ?

२७—जो आरम्भ—हिंसा से है—
है—वही प्रधानी और बुद्ध है।
जिस से क्लेश, घोर वष और परि-
चाप का भागी होना पड़ता है, देख ! उससे
होना ही , कार्य है।

२८—इस मृत्युलोक में जो निष्कर्मदर्शी—मो की
और वेदविद्— होता है, वह बाह्यज्ञात (हिंसादि)

कन्माण सफल वदद्वय
समो निष्ठाश्च वेयवी

३६—ने अस्तु मी। वीरा सभिया सहिया
सया अया सपठ्यसिणो
आधीवरया अहातह डीय
सुवेहमाया पार्थिव पठिन
राहिन अर्थ इय सन्वधि
परिधिहि

३७—साहिस्वामो नाम वीरान्,
समियाण सहियाण सया
अयाण सपठ्यसिण आधीवरयाण
अहातह डीय सुवेहमायाण

और अम्यन्तरालीत (राग द्वेपादि) का छेदन कर, किये हुए कर्मों को देस पापों से निकल है ।

२९—हे । ि ही जो पुरुष वीर, क्रिया में समित्त—सावचेत, विवेक सहित, सदा यत्नवान्, दृढ़दर्शी, पापकर्म से निवृत्त और लोक को यथार्थ से देखनेवाले हैं वे पूर्व पश्चिम, दक्षिण, उत्तर- सारी दिशाओं में सब में प्रतिष्ठित होते हैं ।

३०—जो वीर हैं, क्रियाओं में संयत हैं, विवेक सहित हैं, सदा यत्नवान् हैं, दृढ़दर्शी हैं, से निवृत्त हैं और लोक को यथार्थ रूप से देखने वाले हैं, उनके ज्ञान—अनुभव—को हैं ।

किमपि कषाही १ पाञ्चमस्य न
 विव्यक्तं नत्वितिषेमि
 (सु० १ अ० ४ व० ४)

तत्त्वदर्शी के उपाधि है या नहीं है ?

तत्त्वदर्शी के उपाधि नहीं होती ऐसा मैं कहता हूँ।

डोगसारो

१—जायती केवायती डोगसि
 विष्णुराहुसवि अह्वाय
 अण्णह्वाय पयसु वेव
 विष्णुराहुसवि
 गुह्ये कामा, वणो से मारते
 वणो से मारते वणो से दूरे,
 नेव से जतो नेव दूरे

२—हे पासइ पुसियमिव कुळो
 पणुन्न निवइय वापरिव
 एव वाळसइ चीपिय मइत्त
 अविपाजओ

लोकसार

१—इस लोक में, जो भी प्रयोजन के लिए या बिना प्रयोजन पदकाय जीवों की हिंसा करते हैं, वे इन्हीं जीव-योनियों में बार-बार कर मारे जाते हैं।

हिंसक की कामनाएँ—वासनाएँ अति गुरु—तीव्र होती हैं। इसी कारण वह मारान्तवर्ती—जन्म-के चक्र में है, और चूँकि वह जन्म मरण के चक्र में है, अतः वह सुख से दूर है। (जो विषय के पशवर्ती हो जीवों की घात नहीं) वह न जन्म मरण के चक्र में होता है, न सुख से दूर।

२—शानी मन्द, अज्ञानी और मूर्ख के जीवन को कुश के पर स्थित, पवन से हिलते पतनोन्मुख जल विन्दु के देखाता है।

कुराद् कम्भाद् बाके पकुम्भमाप्ते
 सेष दुक्सेण मूढे विपरिजासमुवेद
 मोहेण गन्ध मरणाद् पर
 एव मोहे पुत्रो पुत्रो

१—सस्य परिजायको
 ससारे परिजाय मक्क
 अस्य अपरिजायको
 ससारे अपरिजाय मक्क

४—ने केप से सागारि
 न सेव
 क्वदु धमवियाजको
 विद्या मरुत्त बाळ्या

मूर्ख मनुष्य ब्रह्म कर्म हुआ उससे उत्पन्न
 कर्मों से मूढ़ हो विपर्यास को—मोहग्रस्त को—
 प्राप्त । है । मोह से वह गर्भ—जन्म और —को
 प्राप्त है और उससे यहाँ फिर पुनः पुनः मोह-
 होता है ।

३—जो र्थ को है उसे संसार का
 स्वरूप होता है, जो परमार्थ की नहीं
 उसे संसार का नहीं छोड़ा ।

४—जो है, वह कामभोगी का सेवन नहीं

।

विषय-सेवन कर लेने पर भी उसे स्वीकार न

यह मूर्ख की दूसरी है ।

कदा दुरत्या पथिभेदाय
 आगमिष्या आगमिष्या
 अथासेवजय सि वेमि

५—पासह एते ह्येसु
 गिह्ये परिनिष्काम्ये
 इत्यफासे पुषो पुषो
 आग्नी केयाग्नी होवसि
 आरमन्वीषी
 एषु चैव आरमन्वीषी
 इत्यपि वासे परिनिष्काम्ये
 रमई पावेहि कन्वेहि
 अथरमे सत्यति अन्नमापि

पुरुष परिणाम को विचार—फल को जान—
प्राप्त काममोगों के भी सेवन की आज्ञा न दे और न
स्वयं ही उनका सेवन करे—यही मैं हूँ।

५—रूपादि कियों में गूढ इन को नरकादि
दुर्गति की ओर ले जाये जाते हुए देखो।

इस ससार में जो भी प्राणी आरम्भजीवी हैं वे यहाँ
बार-बार दुःखों का अनुस्पर्श—वेदन करते हैं।

‘है, प्रत्यूहारी संन्यासियों में भी आरम्भजीवी
होते हैं।’ ‘है, संन्यासी का वेश कर लेने

पर भी मूल विषयान्नितापी होते हैं। ऐसे मोगी लोग
अशरण को—हिंसा आदि को— ल मान
पाप कर्मों में रमण करते हैं।

१—इमेनेसि एकपरिथा भवाह
 से बहुकोहे बहुमाये बहुमाये
 बहुओमे बहुए बहुनहे बहुसहे
 बहुवफये आसवसची पठिउकाने
 कट्टियवाह पश्यमाणे मा मे
 केव अरपसू

२—अन्नाजम्वाह बोधेण सयव मूढे
 फन्न मामिवाणह

६—अह्ना पया मानव ।
 कम्मवीधिया से अणुवरया

६—इस ससार में कितने ही अकेले चर्या करनेवाले होते हैं। वे अत्यन्त क्रोधी, मानो, मायावी, लोभी, पाप में अत्यन्त रत, दौ, अत्यन्त घृत्, अत्यन्त दुष्ट सकलपवाले, हिंसा आदि पापों में एव कुकर्मों होने पर भी हम धर्म के लिए विशेष रूप से चत्थित हैं—प्रयत्नशील हैं—ऐसा निश्चया मापन करते हैं। “कहीं कोई मुझे कुकर्म न देस ले” इस वे सतत् एते हैं।

७—इस और दीप से सतत् मूढ़ मनुष्य धर्म को नहीं जानते—नहीं ।

८—है मनुष्य। प्रजा—प्राणीसमूह—आर्त्त—इसी है। जो कर्मकुशल तथा पापों से अनुपगत है

अविद्या पठिसुफकमाहु
 आकृतेव अणुपरिवहृ ति
 ति वेति

(सु० १ अ० १ उ० १)

१—आवन्ती केवावन्ती लोगसि अवा-
 रमजीवी पण्डु वेव अणारमजीवी

१०—एवोवरह उ कोसमापे
 अथ सुधीति अथस्तु

११—एव यतो आरिषीहि पवेइए
 उहिइ नो पयावय
 आविधु हुक्क पवेव साय

और अविद्या से मोह कहते हैं वे —संसार-चक्र—
में ही अनुपरिवर्तन—बार-बार भ्रमण— हैं ।

९—लोक में जो भी अनारम्भ-जीवी है वे छ ही
प्रकार के जीवों के प्रति नहीं करते हुए जीवन
याप्त हैं ।

१०—यह से हो कर्मों का बन्ध करता
है ।

वह देखता है कि यही सधि—अवसर—है ।

११—यह मार्ग आर्यों ने कहा है ।

दूसर और दुख के विभिन्न रूपों को जानकर,
संयम में उत्थित हो, न कर ।

१२—पुडोष्ठदा इह माजवा
पुडो हुक्त्तं पवेइय

१३—से अदिहिंसमावे अणववमावे
पुडो फासे विपणुन्नय

१४—एव समिवा परिवार विधाहिय

१५—जे असदा पावेहि कमेहि क्याहु ते
जायका पुवकि, इदि क्याहु परि
ते फासे पुडो अदिवासह

१२—सत्सार में पृथक् पृथक् अभिप्राय वाले होते हैं ।

दुःख भी प्रत्येक का भिन्न भिन्न कहा गया है ।

१३ - वह हिंसा न । हुआ, झूठ न बोलता हुआ रहे ।

परिपहों से स्पष्टित होने पर उन्हें से करे ।

१४—ऐसा संयमी ही पर्यायवाला—
चारित्रशील कहा गया है ।

१५—जो पापकर्मों में नहीं है उन्हें भी कदाचित् स्पर्श करते हैं । उन स्पर्शों से स्पष्ट होने पर उन्हें पूर्व कर्मों का फल जान से सहन करे । धीर पुरुषों ने ऐसा ही कहा है ।

१६—वासह एव स्वसधि समुपेक्ष्यात्स
 इवामयपरयत्स इद विष्णुनक्तस
 नधि ममो विरक्तस सि वेमि
 (सू० १ अ० ५ उ० ९)

१७—आपती केयावती लोगसि परिमाहा-
 वती, से अप्य वा बहु वा अर्धु
 वा बृह वा विद्यमत् वा अविद्य-
 मत् वा एषु वेव परिमाहावती

१८—एतदेव एतेषु महाम्मय मवह

१९—लोगवित्तं च म जनेहाए
 एव एतेषुविवाप्यमो

१६—देख—देह के को इस देखनेवाले
 और आत्मा के गुणों में रमण करनेवाले, विप्रमुक्त और
 विरक्त के लिए मय का मार्ग खुला नहीं रहता ।

१७—इस लोक में जो परिग्रही हैं वे अल्प ही या
 , अगु ही या स्थूल, सच्चित ही या अचित सभी
 वस्तुओं का परिग्रह करती हैं ।

१८—यह परिग्रह ही एक-एक परिग्रहियों के महामय
 का हेतु है ।

१९—लोकवित्त—परिग्रह—के का चिन्तन
 कर ! दूर रहनेवाले को कोई मय नहीं होता ।

२०—से सुपठिबद्ध सुवर्णीयसि नग्वा
पुरिखा परमचक्रु विपरिक्कमा

२१—पयसु चोव वमचोरं सि वेमि

२२—से सुव च मे अग्गलवय च ये—वधय
हुक्को अग्गलयेव

२३—एत्थ विरए अण्णारे वीहराय
वित्तिक्कए

२४—पमसे वदिया पास
अण्णयसो परिक्कए

२०—जो निष्पत्तिही है वह सु-प्रति है, तु उपनीत है। यह जानकर है पुरुष। परम चहुवाला हो, समय में पराक्रम कर।

२१—ऐसे साधकों में ही ब्रह्मचर्य होता है—ऐसा मैं कहता हूँ।

२२—मैंने सुना है और अनुभव भी किया है कि बन्ध और मोक्ष आत्मा ही है।

२३—इस परिग्रह से विरत अनगार यावज्जीवन तिति रसे।

२४— को धर्म से बाहर देख, माव से समय में विचरण कर।

२५—एव योग सख्य जणुवादिआदि
ति वेनि

(सु० १ अ० ५ व० २)

२६—आचरी केयाचरी छोयदि अपरि
आहाचरी एएहु चेर अपरिआहाचरी

२७—सुवा वई मेहापी पडियाण निहा-
मिया

२८—समिवाप वन्ने आरिपई पवेइए

२९—अतित्व मय सची खोसिए
एवमात्तव सची हुअकोसए मयइ
वन्हा वेनि नो निहमिअ वीरिअ

२५—इस मौन का अच्छी तरह पालन कर—ऐसा मैं कहता हूँ ।

२६—लोक में जो अपरिग्रही हैं वे (अल्प या बहु, अणु या स्थूल, सचित या अचित, किसी वस्तु का परिग्रह नहीं करते ।

२७—मेघादी पुरुष भी को सुन, अथवा पण्डितों की वाणी को सुन (परिग्रह का त्याग करे) ।

२८—आर्यों ने मैं धर्म कहा है ।

२९—जिस यहाँ मैंने कर्मों की सधि को खीन किया है, उसी कर्म-सन्धि का खीन होना कठिन है ।

अतः मैं अपने वीर्य का गोपन न कर ।

३०—जे पुष्पुद्गाई नो पञ्चानिवाई
 जे पुष्पुद्गाई पञ्चानिवाई
 जे नो पुष्पुद्गाची नो पञ्चानिवाई

३१—छेडनि छारिसिप सिया जे परिभाष
 छोगमन्नेसवदि एव निभाष
 छुपिया पवश्च

३२—इह भाषाकसी पक्षि अणिहे
 पुष्पावरराय बबमाणे सबासीह
 छुपेहाय छुपिया भवे अकामे
 बन्कने

३०—साधक तीन तरह के होते हैं

१—जो पहले उत्थित हो बाद में पीछे
ताकनेवाले नहीं होते ।

२—जो पहले उत्थित हो बाद में ताकनेवाले
होते हैं ।

३—जो पहले उत्थित नहीं होते, और न
बाद में पीछे ताकने वाले होते हैं ।

३१—जो लोक का परित्याग कर पुन इसकी इच्छा
करते हैं, वे गुरुस्थों के वृक्ष्य हैं ।

मुनि ने यह ज्ञान से कहा है ।

३२—आह्लाकाधी पण्डित निस्नेह—निस्पृह—ही पूर्व
और उपर रात्रि में यज्ञपूर्वक शील की सम्प्रेषा करता
रहे । लाभालाभ की अच्छी तरह चुन, अकाम और
रहित बन ।

३३—इमेव चेव सुष्मादि किं ते
 सुष्मेव वस्त्वथो सुस्मिदि वाहु
 सुष्म

३४—अदित्य सुस्मतेदि परिन्वाविभेगे
 भासिप
 सुप इ वाडे गम्माहसु रज्ज
 अस्ति नेव पतुवद् ह्यसि वा
 क्षपसि वा

३५—ये इ एते संविद्वपदे सुष्मी
 जन्महाडोगसुपेहवापे इव वस्त्व
 परिण्वाय सस्त्वसो से व हिंसद्
 सस्त्वमई नो पगम्माह

३३—आभ्यन्तर शत्रु-दल के साथ ही युद्ध कर, बाहर के युद्ध से तुम्हें क्या लाभ ?

आत्मयुद्ध के योग्य सामग्रो का मिलना निश्चय ही दुर्लभ है ।

३४—यहाँ कुशल पुरुषों ने जिस प्रकार परिज्ञा—
विवेक—वतलाया है, उसमें कर ।

से च्युत मूर्ख गर्भादि में भ्रमण है ।

जिन-प्रवचन में ही कहा गया है रूपादि में अथवा
हिंसादि में आसक्त होने से पतन होता है ।

३५—जो को था दृष्टि से देखता हुआ
मुक्ति पथ में दृढ़ रहता है, वही अनन्य मुनि है ।

सर्व प्रकार से कर्मों के स्वरूप को जानकर वह हिंसा
नहीं करता, समय रखता है और घुष्टता नहीं करता ।

३१—उवेहसानो पचेय साय बण्णायसी
 चारये कवप्य सम्बडोप
 एवप्पसुहे विदिसम्मह्णे
 तिथिव्वचारी करए पयासु

३४—से वसुम सम्बसम्मानागवफ्फलायेव
 कप्पायेव अकरमिञ्च पापकम्प
 उ सो ज्जनेसी

३८—अ समवि पासहा उं मीणवि
 पासहा
 अं मीणवि पासहा उ समवि
 पासहा

३६—प्रत्येक प्राणी के सुख को हुआ
मोक्षामिलायी पुरुष में किसी भी पाप कर्म का
आरंभ नहीं करता ।

वह केवल आत्ममुक्ती होता है, मोक्ष से विपरीत
दिशा में नहीं जाता, आरंभ से उदासीन रहता है और
खियों में भुद्ध नहीं होता ।

३७—वह सद्यमी सर्व से, उत्तम प्रज्ञा से,
समन्वागत आत्मा द्वारा अकरणीय पाप कर्म नहीं
।

३८—जिसके सम्यक्त्व जानो, उनके मीन को भी
जानो ।

जिसके मीन जानो, उसके सम्यक्त्व को भी
जानो ।

३६—न इम सक्क विदिठेहि अदिम-
माजेहि गुणघाणेहि बकसमाभारेहि
पससेहि गारमावसेहि

४०—सुधी सोण सभावाय सुणे अटीरा
पव ल्हू खेपवि बीरा सम्मचवसिणो
एस बोहन्वरे सुधी, विण्ये सुचे
विएए विवाहिए चियेमि

(सु० १ अ० ६ उ० ३)

४१—यामावुगाम बुद्धमाणस्य बुद्धाय
हुम्परकव मवइ अविचरस्य
विपकायो

३९—शिथिल, , विषयास्वादी, कर्मचारी,
और घर में रहनेवाले मनुष्यों द्वारा यह नहीं है।

४०—मुनि भोजन को शरीर को धुने—कृषा
करे। सम्यक्त्वदर्शी वीर प्रातः और रात्रि आहार का
सेवन करते हैं।

समुद्र को तिरनेवाला ऐसा मुनि ही लीन,
मृत तथा विरक्त गया है—ऐसा मैं कहता हूँ।

४१—प्रामाण्यमान में अकेले विचरते हुए
मिथु का विहार दुर्यात और दुष्परत होता है।

४२—वयसाधि एवो बुद्ध्या कुम्भवि

मानवा

४३—उन्नयमाधे य नरे महया मोहेष

मुग्ध

४४—सवाहा परे सुभो सुभो

हृत्सन्मा अजायधो अपासधो

४५—एव ते मा होव

एव कुचकस्त इत्य

४६—सहिष्ठीर उन्मुत्तीर सपुरककारे

उसन्नी अनिवेषधे

४२—कई मनुष्य वचन मात्र से कृपित हो जाते हैं ।

४३—अभिमानी मनुष्य महामोह से विवेक शून्य होता है ।

४४— नौ और मोहन्य मनुष्य के सामने वार-वार अनेक दुरतिक्रम बाधाएँ उपस्थित होती हैं ।

४५—ऐसा तुम्हें न हो
यह ज्ञानी की दृष्टि है ।

४६—शिष्य तद्दृष्टि हो—गुरु की दृष्टि से चले ।
उसकी निस्सगता का अनुसरण करे । उसे रसे ।
उसमें पूर्ण रसे । उसके पास रहे ।

४७—अथ विहारी निरुतिषाई पथ
निकम्भाई पठिवाहिरे पासिय पाणे
गणिकम्भा

४८—से अमिस्कममाणे पठिस्कममाणे
सकुपमाणे पसादेमाणे विविवाह्याणे
संपठिष्ममाणे

४९—एगथा गुणसमिधस्व रीवजो काव
सक्यस समणुचिन्ना एवाविया
पाथा उरायदि इहलोग वेयज
विजावठिय

अ आरुठिक्य कम्म व

४७—वह यतनापूर्वक विहार करे । चलते
उसमें ही चित्त रखे । वह पथ पर दृष्टि हुआ,
को देखता— —हुआ चले ।

४८—वह . . . सकोच, विनिवर्तन
प्रमार्जनादि कार्य से करे ।

४९—यदि कमी गुण और समितियों से युक्त संयमी
की गमन आदि क्रिया के द्वारा . . . के कोई
प्राणी या व्यथा जाने प्राप्त होता है तो कर्म
भव में अनुभव होकर क्षय हो है ।

यदि कर्म आकुट्टि पूर्वक—सकल्प पूर्वक किया हुआ
हो तो उसे प्रायदि द्वारा दूर चाहिए ।

परिन्वात्य विवेगलोः एव से
अप्यमाएण विवेगं किञ्च वैचरी

५०—से पमूयदमी पमूयपरिन्वाये एवसे
समिप सक्षिप सवाअए, एदह
विप्यदिवेय्य अप्याण किमेस जपो
करिस्सइ १ एस से परमारामो
वाजो ओगमि इवीजो मुपिणा
ह एव एवेइय

५१—अन्वादिअमाणे गामधन्नेहिं अवि
निव्वडासए अवि ओमोयदिम
हुआ अवि धु डाण डाइया
अवि गामाणुगाय हुइविआ अवि

इस पूर्वक किए हुए प्रायश्चित्त का ज्ञानी गुण कीर्तन करते हैं।

५०—वह बहुदर्शी, बहुज्ञानी, त, समित, गुणवान, सदा स्त्री को देखकर आत्मा में टि करे—यह मेरा क्या करेगी ? इस लोक में स्त्रियाँ —महाप्रलीभन की वस्तु हैं। मुनि ने ऐसा है।

५१—कदाचित् समयी ग्रामधर्म— से पीड़ित हो तो वह निर्दल—निस्सत्त्व—आहार करे। आहार की को घटा दे। में अवति हो।

बाहार बुकिदिजा बधि यर
इसीहु मय

१२—पुन्य दहा पच्छा फासा पुन्य फासा
पच्छा दहा इन्नेय कज्जहासगकरा
मवधि पडिलेहाय जागमिच्छा
जाणदिग्जा जनासेवणाय छि वेमि

१३—से नो कादिय नो पासणिय
नो मामय नो कय किरिय
बह्णुसे अरुण्य ससुडे परिवग्गइ
सवापाव यम मोण समणुवादि-
ग्गासि छि वेमि

(शु० १ अ १ उ० ४)

एक ग्राम से दूसरे ग्राम । का सर्वथा
विच्छेद कर दे। स्त्री में मन को न लगावे।

५२—पहले है स्वर्ण—भोग। पहले
—भोग है, । ये भोग बलेश और मोह के
हेतु हैं। इसे अच्छी तरह देख—जान—आत्मा को
भोग-संकेत से दूर रहने की शिक्षा दे। ऐसा मैं
हूँ।

५३—वह स्त्री कथा न करे, स्त्रियों की ओर न
ताके, उनके साथ एकांत पास न करे, उनके
न करे। उनके चित्त को आकर्षित करने के लिए
न करे। वह से गुप्त रह, को
समस्त रस से सदा दूर रहे। वह इस भोग—
ब्रह्मचर्य की करे। ऐसा मैं कहता हूँ।

१४—विदिगिष्णसमावन्नेष अप्यानेष
नो क्वद्द समादि

१५—दमेव सण्ण नीसर्कं व विनेदि
पवेइव

१६—सिवा वेगे अपुगण्ठदि
वसिवा वेगे अपुगण्ठदि
अपुगण्ठवाणेदि अपुगण्ठमाणे
क्वद्द न निविउजे ?

१७—सङ्गिस्व व समयुन्नस्व सपण्णव
माणस्व समिपदि मन्नमाणस्व
परावा समिवा होइ

५४—सञ्जय-ग्रस्त आत्मा द्वारा समाधि प्राप्त नहीं की जा सकती ।

५५—वही सत्य है, निश्चय है जो जिनों द्वारा प्रवेदित है—कथित है ।

५६—कई गृहस्थ दृष्टि का अनुसरण करते हैं । कई गृहत्यागी भी दृष्टि का अनुसरण करते हैं । अनुसरण न करनेवाला, अनुसरण करनेवालों के बीच रह कैसे निर्देह को प्राप्त करेगा ?

५७—श्रद्धालु और अच्छी तरह प्रव्रजित होने वाले समझदार पुरुष के "समय—जिन कथित धर्म—ही सत्य है" ऐसी श्रद्धा होती है ।

असमिपति मन्मथापस्त्य एवावा
 असमिया होइ
 असमिपति मन्मथापस्त्य एवावा
 समिया होइ
 असमिपति मन्मथापस्त्य एवावा
 असमिया होइ
 समिपति मन्मथापस्त्य समिया
 वा असमिया वा समिया होइ
 एवेहाए
 असमिपति मन्मथापस्त्य समिया
 वा असमिया वा असमिया होइ
 एवेहाए

"समय—जिन कथित धर्म—ही है"—आरम्भ में ऐसा माननेवाले की कदाचित् वाद में हो जाती है।

"—जिन कथित धर्म—ही सत्य है" में ऐसा न माननेवाले की कदाचित् वाद में नहीं रहती— हो जाती है।

"समय—जिन कथित धर्म—ही सत्य है" में ऐसा न माननेवाले की कदाचित् वाद में नहीं रहती अ हो जाती है।

"—जिन कथित धर्म—ही सत्य है" ऐसा माननेवाले के अथवा दि से ही होते हैं।

"समय—जिन कथित धर्म—ही सत्य है" ऐसा न माननेवाले के सम्यक् अथवा तत्त्व असम्यक् विश्वास के यक् ही होते हैं।

१४—उक्तेषामापी अणुवैश्यान् नृपा-
 उक्तेषादि समिवाप, इत्येवं तस्य
 त्वी नोसिजो मपह, से इतिवत्स
 दिवत्स ग् इत्यनुपासह, इत्यपि
 वासभादे अप्याप नो उक्तेषामिजा

१६—दुर्मसि घाम सन्नेव न इत्यस्यति
 मन्सति, दुर्मसि नाम सन्नेव
 न अणुवैश्यान्सति मन्सति, दुर्मसि
 घाम सन्नेव न परिवेश्यान्सति
 मन्सति एव न परिषिष्यान्सति
 मन्सति, न अणुवैश्यान्सति मन्सति,

५८—सत्यदर्शी सशयग्रस्त से कहे - कृष्ण से विचार कर, इस समय में प्रवृत्ति से ही कर्म का नाम होता है ।

चरि और स्थित की गति को भी तरह देख अपनी को इस बाल भाव में उपदेशित न कर ।

५९—हे पुरुष । जिसे तू मारने की इच्छा है, विचार कर वह भी तेरे जैसा ही सुख दुःख का अनुभव करनेवाला प्राणी है, जिस पर हुकुमत करने की इच्छा है विचार कर, वह भी तेरे जैसा ही प्राणी है, जिसे दुःख देने का विचार करता है, विचार कर, वह तेरे जैसा ही प्राणी है, जिसे अपने वश में रखने की इच्छा है विचार कर, वह तेरे जैसा ही प्राणी है, जिसके प्राण लेने की इच्छा है, विचार कर वह तेरे जैसा ही प्राणी है ।

अथ वैश्वदेवपुत्रोद्गीषी
उन्हा न हवा नचि वायव

अनुसवेयमाम्नामेण न हवन्
नामिषवव

१—जे आवा से विन्नावा
जे विन्नावा से आवा
जेन विवाचर से आवा
त परुन्व पकिस्साव

११—एस आवावाई समिवाव
परिवाव विवादिप सि वेमि

सर्व पुरुष तरह विवेक रखता हुआ जीवन
विश्वास है। वह न को है और न किसी की
बात करता है।

जो हिंसा है उसका फल पीछे उसे ही भोगना
पड़ता है, अतः वह किसी भी प्राणी की हिंसा करने की
कामना न करे।

६०—जो आत्मा है वह रि है। जो विज्ञाता है,
वह आत्मा है। जिससे जाना है, वह आत्मा है।
जानने के सामर्थ्य के द्वारा ही आत्मा की प्रतीति सिद्ध
होती है।

६१—जो व्यक्ति आत्मवादी है उसी का पर्याय—
सर्वमानुषान् सान्यक् कस्य गया है। ऐसा मैं हूँ।

१२—अजाणाय एते सोमहाणा
 अजाय एतो निह्यहाणा
 एव से मा होव
 एव कुसुमस्य इत्यम
 वसिष्ठीय वसुष्ठीय वसुष्ठीयकारे
 वसुष्ठीय वसुष्ठीयस्ये अमिमूय
 अदवय्

१३—अपमिमूय पयू निराकनवयाय
 से मह अदविमणे

१४—वयायन वयाय अमिजा

६२—कई में उद्यमी होते हैं। कई में
निरुद्यमी होते हैं। यह तेरा न हो।

यह पुरुष का दर्शन है। गुरु की दृष्टि से
देखनेवाला, गुरु की निर्लसिम वृत्ति से चलने, गुरु
को आगे रखने, गुरु में पूर्ण रखने
और सदा गुरु के समीप रहने दि दृष्टियों को
जीत कर दृष्टा बनता है।

६३—जो अपने विनय में महान् है, दि मन
दृष्टि से जरा भी नहीं वह किसी से अपराजित
शिष्य निरालम्बन में—सब में के
आधार पर रहने में—समर्थ होता है।

६४— से को जानो। कथन से कथन को
जानो।

३१—सहस्रनाम्नाप परवागरणेन जन्तेसि
या भविष्य सुखा

३२—विदेस माहवद्वेम्बा मेहावी
मुपविशेदिया सज्जबो सज्जप्पया
सम्म सममिप्प्याय

३३—इह आराध परिष्वाय जल्लोणे
एत्ते आरामो परिष्वाय

३८—निह्वियही परि जाग्गेण सया
परक्कमेज्जासि ति वेमि

३९—एतु सोया अहे सोया
विदिथ सोया विचाहिया ।

६५—अपनी बुद्धि से अनुभवियों के से अ
दूसरों से सुनकर ही र्थ है।

६६—मे सर्व से, सर्वतो भाव से, अच्छी
समष्टि जान लेने पर का न करे।

६७—इस संसार में ही आराम है, यह
मुमुक्षु इन्द्रियों को वश कर, में तल्लीन
हो, करे।

६८—निष्ठावान् आत्मार्थी सदा के अनुसार
करे।

६९— स्रोत है, अघः स्रोत है, तिर्यक्
में भी स्रोत है। देख। इन पाप-प्रवाहों की ही स्रोत

एव सोवा विचक्षणाया
जेहि सपवि पासहा ॥

७०—आचह तु पेहाए इव विरमिञ्च
वेपथी

७१—विचक्षु सोव निचक्षन्म मस मई
अकम्मा आणह पासह पविठेहाए
नाचकंणह

७२—इह आणह गह परिज्जाए
अण्णेह आइमरणस्स वट्टममा
विज्जाएएए

कहा गया है जिससे आत्मा के कर्मों का संग—वध होता है ।

७०—आवर्त को देखकर वैदक्य इससे दूर होता है ।

७१—श्रीत को रोकने के लिए जो निष्क्रमण है, वह महापुरुष अकर्मा ही सब जानने देखने तथा परमार्थ को देख भोगों की आ षा नहीं ।

७२—वह जागति-गति को जान कर, भरण के मार्ग को पार कर, मोक्ष को पा लेता है ।

७१—सम्मे सरा निषदन्ति
 एकत्र बन्ध न विरुद्ध
 मद् एक न शाहिया
 शीघ्र अण्णाहुजस्त खेयन्ते
 से न शीघ्र न हस्त्ये न बहू
 न वसे न चरसे न परिमळसे
 न किण्हे न भीडे न कोरिय
 न हाकिरे न मुक्किले
 न दुरमिगणे न दुरमिगणे
 न सिचे न कडुय न कसाय
 न अविडे न मडुरे न कस्तडे
 न मठय न गळय न छडुय
 न क्ये न जिह्ने न दुक्ते

उस—उस का कर्म करने में सारे निवृत्त
 हो जाते— हो जाते हैं। वहाँ तक की पहुँच
 और न बुद्धि उसे कर पाती है। कर्म-मल
 रहित केवल चैतन्य ही उस का होता है।

मुक्त आत्मा न दीर्घ है, न , न दृप्त—गोल। वह
 न त्रिकोण है, न चौरस, न मण्डलाकार वह न है,
 न नील, न , न पीला और न ही। वह न
 सुगन्धि है, न दुर्गन्धि है। वह न तिष्ठ है, न
 कटुता, न कषेला, न और न मधुर। वह न कर्कश
 है, न मृदु। वह न भारी है, न । वह न शीत है न
 उष्ण। वह न स्निग्ध है, न रुध्र।

न काङ्क न खदे न ह्री
 न इत्थी न पुरिष्ठे न अन्नदा
 परित्ते खाने खमा न विक्खय
 अरुणी सदा
 अपयस्स पर्व नत्थि
 से व खदे न ह्ये न गये न रणे
 न काये हन्थेव चि वेमि ।

(सु० १ अ० ५ प० ६)

वह न शरीर धारी है, न पुनर्जन्मा, न आसक्त ।
वह न स्त्री है, न पुरुष है, न नपुंसक ।

वह ज्ञाता है, वह परिज्ञाता है, उसके लिए कोई
उपमा नहीं ।

वह अरूपी सत्ता है ।

वह अपद है वचन अगोचर के लिए कोई पद—
वाचक शब्द नहीं । वह शब्द रूप नहीं, रूप रूप नहीं,
गन्ध रूप नहीं, रस रूप नहीं, स्पर्श रूप नहीं । वह
ऐसा कुछ भी नहीं । ऐसा मैं कहता हूँ ।

ध्रुव

- १—अथ समिधत्सर्ग
 इय ङोगस्त आभित्वा
 पाईय पशीय दाहिण कशीण
 आङ्गुल्लो विस्व किन्दे वेमवी
- २—से अङ्गिष्ठु वा अङ्गुष्ठिष्ठु वा सुष्-
 समापेष्ठु पपेय सति विरु अयसम
 मिष्वाय सोय अङ्गविम मङ्गिष
 आङ्गविम अयङ्गविम
- ३—अङ्गेसि पाजाय अङ्गेसि सुवाय
 अङ्गेसि बीजाय अङ्गेसि सुवाय
 अङ्गुवीह मिष्ठु यम्ममाशुनिष्ठुञ्जा

धृत

१—रागद्वेष हीन समदृष्टि ज्ञ पुरुष, लोक पर
—प्राणियों पर—दया रि १ पूर्व, पश्चिम, दक्षिण,
दिशा में धर्म कहे, धर्म का विभाग करे, धर्म का कोर्तन
करे।

२—सन्निवृत्त हों अथवा अनुसिद्धता सुनने की
वाली को भयादा का न कर वह शान्ति, विरति,
उपशम, निर्वाण, शौच, वै, मार्दव और का
उपदेश दे।

३—मिथु सर्व प्राणियों को, सर्व मृतों को, सर्व सत्त्वों
को, सर्व की विचार कर धर्म का कथन करे।

४—अपुबीदं विदुस्त्वं बन्धमाहन्समाधे
 नो अक्षार्यं वासाह्वा नो पर
 वासाह्वा
 नो अन्नाह पाप्याह शूयाह जीवाह
 सत्याह वासाह्वा

५—हे अथासायदं अथासायमाधे
 बन्धमाप्यार्यं पात्राण्य शूयाण्य जीवाण्य
 सत्याण्य जहा हे हीने अक्षरीने
 पर हे भवद् यत्न महागुणी

(अ० १ अ० ३ उ० ५)

४—विचार कर घर्म कथन हुआ मिष्ट अपनी
 न करे, न दूसरे की आ करे। वह
 प्राणी, मृत, जीव और सत्त्व की तना न करे।

५—वह न करनेवाला और
 न करानेवाला महामुनि उसी शर होता है
 जिस . मृत, जीव और सत्त्वों लिए
 असदीन दीप ।

विमोहो

१—इमेतिं आचार्यगोचरे नो मुनिसन्धे
यति

२—ये इह आत्मन्तु अमुष्यमाया
ह्य पापे चानमाया ह्यजो वापि
सममुजायमाना अमुवा अदित्त्
माचयन्ति अमुवा पायात् विदम्बति
रंभहा अति छोप नति छोप
मुने छोप अमुने छोप साह्य छोप
अपश्य छोप सपश्यसिप छोप
अपश्यसिप छोप

विमोक्ष

१— इस संसार में कइयों को आचारगोचर अच्छी तरह ज्ञात नहीं होता ।

२— वे इस संसार में आरम्भार्थी हो दूसरों का अनुसरण करते हुए कहते हैं "प्राणियों का हनन करो ।" इस तरह वे घात करवाते हैं । हिंसा करते हुए का अनुमोदन करते हैं । अथवा बिना दिया ग्रहण करते—चोरो करते हैं । अथवा इस तरह की बात करते हैं "लोक है, लोक नहीं है, लोक ध्रुव है, लोक ध्रुव नहीं है, लोक आदि है, लोक आदि नहीं है, लोक 'वसित है

सुप्तेति वा हुप्तेति वा कृष्णापेति
 वा पापेति वा सङ्गति वा असा-
 न्गति वा विद्विति वा अविद्विति वा
 निरप्यति वा अनिरप्यति वा ।

३-अभिज विष्पदिधन्ना नामां धम्म
 पन्नवेमाणा इत्थमि चाण्ह अफलात्

४-एव वेत्ति नो सुयत्ताप धम्मे नो
 सुपन्नते धम्मे मयइ

५-एव अह्येय मगधया पवेश्य आसुपन्नेव
 आणवा पासया अहुवा गुची
 धमीगोवत्स चि वेमि

लोक 'वसित है, यह सुकृत् है, यह दुष्कृत् है ;
यह पुण्य है, यह पाप है, यह साधु है, यह असाधु है,
सिद्धि है, सिद्धि नहीं है, है, नरक नहीं है ।”

३—इस वे विभिन्न मतिवाले मेरा धर्म (ही
सत्य है) ऐसी करते हैं। पर उनके कथन
अकस्मात् हैं यह जानो ।

४—इस तरह 1 कहा हुआ और प्ररूपित किया
हुआ धर्म सु त्त और सु प्रज्ञापित धर्म नहीं होता ।

५—अगर धर्म कहे तो जैसा ने
देसकर कहा है वैसा कहे अथवा वचनगोचर
की गृहि रसे—मीन रसे ।

१—सम्बन्ध सम्यक् पाद स्मेव उवाच
कन्म एतु मई विवेगे विवाहिय

२—गामे वा अहुषा रणे
नेव गामे नेव रणे बन्ममायाजह
पवेइव भाहणेव माइयया

८—ज्ञाना विन्नि उवाहिया नेसु इमे
वायरिया सयुग्ममाजा समुहिया

९—जे गिष्णुया पावेहि क्सेहि
अधियाया ते विवाहिया

१०—सु अह विरिय विसाहु सम्बन्धो
सम्पावति च ण पाहियक्क
वीचहि कन्मसमारमे च

६— " पाप है। उसी को मैं अतिक्रमण कर हूँ—यही मेरा विवेक है।

७—मतिमान् माह्न ने हे धर्म ग्राम में भी हो है और में भी। धर्म न ग्राम में होता है और न में (वह आत्मा में होता है) यह समझो।

८—याम तीन कहे गये हैं जिनमें " सयुद्ध हो समुत्थित होते हैं।

९—जो पाप कर्मों से निवृत्त हैं, वे निदान-रहित कहे गये हैं।

१०—ऊँची, मीची, —इन सब दिशाओं में कर्म-समारम से प्रत्येक जीव को दुःख होता है।

११—व परिष्णाय मेहावी नेव सव एषहि
 कापहि वृह समारमिञ्जा नेवन्ने
 एषहि कापहि वृह समारभावेञ्जा
 नेवन्ने एषहि कापहि ईह समारम-
 वेऽपि समणुभावेञ्जा

१२—जेवञ्जे एषहि कापहि वृह
 समारमिपि वेसिपि पर्व कञ्जामो

१३—व परिष्णाय मेहावी व वा वृह
 जन्त वा वृह ओ वृहमी वृह
 समारमिञ्जासि सि नेमि

(सु० १ अ० ८ व० १)

११—यह जानकर मेघावी इन पृथ्वीकायादिक के प्रति दण्डसमारम्भ न करे, दूसरे से इन के प्रति दण्डसमारम्भ न करावे और यदि कोई इन जीवों के प्रति दण्डसमारम्भ हो तो उसे न समझे ।

१२—यदि कोई अन्य व्यक्ति भी इन जीवों के प्रति दण्डसमारम्भ करता है तो उससे भी हम लज्जित हैं ।

१३—इस कर बुद्धिमान् जीवों के प्रति उस दण्ड शब्दवा अन्य —किसी भी से समारम्भ न करे । ऐसा मैं कहता हूँ ।

१४—मन्त्रिक्रमेण वचसा विधायोऽस्युक्तमाया
समुद्रिया समुद्रा मेदापी वचसा
परिधायं निद्यामिया

१५—समिधाय वचसे आरिषादि पवेद्य

१६—ते अणवकसमाया अणववापमाया
अपरिभादेसाया नो परिगृह्यापती
सम्भाषदि च अ लोकादि

१७—निदाय वच पापेदि पाव कम्ब
अमुक्तमाये

१४—बुद्ध पुरुषों के सुन और कई
 बुद्धिमान म वय में सबुद्ध हो, में अवस्थित
 हुए हैं ।

१५—आर्यों ने से—प रहित ही धर्म
 है ।

१६—जो निराकांक्षी हैं, जो अतिपात—हिंसा—नहीं
 करते, जो अपरिग्रही हैं वे सारे लोक में किसी का
 परिग्रह नहीं करते ।

१७—वे प्राणियों के प्रति —हिंसा—का
 त्यागकर, किसी का पाप कर्म नहीं करते ।

१४—सविभ्यो वयसावियो अशुभ्यमाणा
समुद्रिया समुवा मेहापी वयज
पदिवाथ निवामिया

१५—समिवाथ वामे वारिपदि पवेथ

१६—ते अथवर्जसमाणा अशुभ्यमाणा
अपरिमादेमाणा नो परिमहावती
सम्भावति च न ह्योगति

१७—विदाथ इव पाणेदि पाथ कम्प
अशुभ्यमाणे

विमोह

२६७

१४—बुद्ध पुरुषों के सुन और कई
बुद्धिमान म वय में सशुद्ध हो, संयम में अवस्थित
हूए हैं ।

१५—आर्यों ने से—प रहित हो धर्म
है ।

१६—जो निराकांक्षी हैं, जो अति —हिंसा—नहीं
करते, जो अपरिग्रही हैं वे सारे लोक में किसी का
परिग्रह नहीं करते ।

१७—वे प्राणियों के प्रति दण्ड—हिंसा—का
, किसी का पाप कर्म नहीं करते ।

१८—आहारोपचया वेदा परीसह
पम्बुदा

१९—पासह एते सर्व्विदियहि परिगिब्राय-
मायेहि ओष

२०—द्व द्वह जे सनिहाय सत्वास्व
हेयन्ते

२१—से मिकसु काकन्ते बकन्ते
सायन्ते कपन्ते विभबन्ते समबन्ते
परिमाह अममायमाये काठेयुदाह
अपठिन्ते पुहयो द्विषा निषाह
(सु० १ अ० ८ सू० ३)

१८—यह आहार से उपचित—पुष्ट—शरीर परिपक्वों
के सम्मुख गुर होता है ।

१९—देख कई सर्व शक्तिद्रव्यों से ग्लान होने पर भी
ओजस्वी होते हैं ।

२०—जो सन्नियान— —और का सेवक
है वह दया का है ।

२१— को जाननेवाला, बल को जाननेवाला,
को जाननेवाला, क्षण को जाननेवाला, विनय को
जाननेवाला, - को जाननेवाला भिक्षु पति
में नहीं हुआ य उचित हो निदान
न हुआ राग और द्वेष का उद्वेग कर आती
है ।

१२—यत्सर्वं निष्कृत्स्नं एव मयद् पुत्रो
 कस्तु जहमसि नात्महमसि
 सीयफास्य अहियासिचप से यस्तुम
 सम्बसमप्यागवफनायेण अप्यायेण
 वेद अकरपाय आण्टे कवस्सिणो
 इ उ सेय कमेणे विद्महाइय ।
 कथाभि यत्स काठपरिवाय सेऽभि
 यत्स विमति कारय इत्येय
 विमोहायतण दिप सुइ कयनित्सेस
 आमुगाभिय वि वेदि ।

(सु० १ अ० ८ व० ४)

१३—यत्सर्वं निष्कृत्स्नं एव मयद् —
 से निष्कामि च कस्तु जह इमि

२२—जिस भिक्षु को ऐसा हो कि मैं निश्चय ही उपसर्ग से घिर गया हूँ और शीत-स्पर्श को सहन करने में समर्थ नहीं हूँ, वह समयो अपने समस्त ज्ञानबल से उस को न करता हुआ, अपने को समय में अवस्थित करे। (आगर उपसर्ग से बचने का कोई उपाय नजर नहीं आवे तो) तपस्वी के लिए श्रेय है कि वह कोई विहासनादि मरण स्वीकार करे। निश्चय ही यह मरण भी उस साधक के लिए पर्याय—समय-प्राप्त मरण है। इस मरण में भी वह कर्म का अंत करनेवाला होता है। यह मरण भी मोह रहित व्यक्तियों का न रहा है। यह हितकारी है, सुखकारी है, ब्रह्म है, निःश्रेयस है और अनुगामी—पर जन्म में शुभ फल देनेवाला है।

२३—जिस भिक्षु को ऐसा हो कि मैं इस समय गलान ही गया हूँ, अनुक्रम से समय पालने के लिए

समय इस सरीरा अणुपुण्येण
 परिबहिष्य से अणुपुण्येण आहार
 सवह्निना । अणुपुण्येण आहार
 सवह्निना क्वाप्य पयणूप किंवा
 समाहित्ये पञ्जावयही क्वाप्य
 यिकम् अमिनिहुत्तये, अणुपुण्ये
 सिचा गाम वा नगर वा क्षेत्र
 वा कण्ठ वा मण्डप वा पृथ
 वा दोग्दुह वा आगर वा आसय
 वा सन्निवेश वा पिण्ड वा
 रायहादि वा क्वाप्य आह्वान ।
 क्वाप्य आह्वान से क्वाप्य
 काय मयकमिना । काय मय

इस शरीर को परिवहन करने में असमर्थ हैं, वह अनुक्रम से आहार को घटावे, और ऐसा करके कबायों को क्षीण करे। फिर समाहित हो फलक की र स्थिर चित्त हो मृत्यु के लिए प्रस्तुत होकर शरीर-त्याग करे। वह ग्राम अथवा नगर, सेट अथवा कर्वट, मड अथवा , द्रोगमुन्न अथवा आकर, आश्रम अथवा सन्नियेष, निगम अथवा राजधानी में प्रवेश कर तृणों की याचना करे। तृणों की याचना करके वह साधु उसको लेकर एकान्त में जाय।

कृत्स्निष्ठा अप्यदि अप्यपामे अप्य
 नीप अप्यहरिय अप्योष्ठे अप्यो-
 द्य अप्युत्तिगप्यगवगमद्वियमवकडा-
 स्याज्य पद्विष्ठेद्विय २ पमद्विय २
 तयाह स्यद्विष्ठा । तयाह स्यद्विष्ठा
 यद्यपि सय्य इत्यद्विय द्विष्ठा ।

ए सय्य सय्यथाई ज्योप विमो
 द्विष्ठाकद्विष्ठा धार्द्विष्ठा अप्यार्द्विष्ठा
 विष्ठाज्य मेरु काय सय्यिष्ठा
 विष्ठाकद्विष्ठा पटीसहोवस्यो अप्यिष्ठा
 विष्ठासय्यथाप्य मेरुवस्युष्ठापिष्ठा ।
 तयापि तस्य कायपद्विष्ठाप्य द्विष्ठा
 सय्य विष्ठाकद्विष्ठाप्य ।

एकान्त में अम्हों से रहित, प्राणियों से रहित, बीजों से रहित, हरित से रहित, ओस से रहित, जल से रहित, कीड़ी नगर, लोलन फूलन—काई, मिट्टी और मकड़ी के जालों से रहित को अच्छी देखकर तथा उस स्थान का परिभार्जन कर चुगों को । चुगों को टि वहाँ उस इगित करे ।

सत्यवादी, ओजस्वी, सत्सार से उत्तीर्ण, कथा का व्यागो, पदार्थों को जाननेवाला और से मुक्त मिश्र इस शनमगुर शरीर के का त्याग करे, नाना के परिपह-उपसर्गों को सहन हुआ तथा भगवद् कथित धात्री में रि हुआ, इस सत्य, मैत्र—दुश्चीर्ण—मरण को अपनावे । निश्चय ही यह मरण भी उस साधक के लिए काल पर्याय— श्राव है । इस मरण में भी वह साधक कर्म का करनेवाला होता है ।

इत्येवं विमोहायवप द्विय सुह
 केम यित्सेस आणुगामिय चि वेसि ।
 (सू० १ अ० ८ व० १)

२४—अस्त न भिन्नस्त एव भवइ —
 से गिज्ञासि च सङ्ग आह इममि
 सम्य इम सरीरा जगुत्स्येन
 परिवहिस्य स्याइ सपरिकथा
 इत्यपि सम्य काय च योग च
 ईरिय च पञ्चकथाइया
 च सज्ज सज्जावाइ अङ्ग-
 गामिय चि वेसि

(सू० १ ; अ० ८ व० ७)

यह भी मोह-रहित व्यक्तियों का आश्रय-स्थल रहा है। यह हितकारी है, सुखकारी है, दमकर है, निःश्रेयस है और अनुगामी है—पर जन्म में भी शुभ फल देनेवाला है। ऐसा मैं कहता हूँ।

२४—जिस मिट्टी को ऐसा हो कि मैं इस न्य गलान हो गया हूँ, अनुक्रम से के लिए इस शरीर को परिवहन करने में र्थ हूँ . यह तृणों को विछावे। वहाँ उस शरीर का, योग का, ईया का प्रत्याख्यान करे।

सत्यवादी, ओजस्वी . दृष्टीर्ण मरण को अपनावे। निश्चय ही यह मरण भी निःश्रेयस है और अनुगामी है—पर जन्म में भी शुभ फल देनेवाला है। ऐसा मैं हूँ।

२५—हे मित्रस् वा मित्रहृदी वा कल्प
 वा (३) आहारेणान्ने जो वामाजो
 ह्युपाजो दाहिण ह्युच सचारिजा
 आसायमाने दाहिणाजो वाम ह्युच
 जो सचारिजा आसायमाने ।
 हे अनासायमाने आचरित आचम
 शाने एते हे अमितमन्नाय
 भवद् । अमेव अगववा पनेइय एमेव
 अथिसमिवा सम्बन्धो सम्बन्धाय
 समसमेव समभिजायिवा ।

(इ १ अ० ८ १० ।)

२६—हे मित्रस् अथेठे परिकुक्षिण कस्य वा
 मित्रकुक्षिण एव भवद्-वाप्यसि अद्

२५—मिथु अथवा मिथुणी असनादिक का करते हुए लेने के लिए उस आहार को बायें से दाहिने गाल की ओर न ले जाये, और न के लिए दक्षिण गाल से बायें गाल की ओर ले न लेने से प्राप्त होती है। तप भी प्राप्त होता है। ने जो कहा है, उसे ही , सर्व से को जानते हुए रहे।

२६—जो मिथु अचेलक हो उसे यदि ऐसा हो कि न वृण को सह । हूँ, शीत स्पर्श को सह

लक्ष्मणास्य अहियासिचय सीमन्तास्य
 अहियासिचय सेवकास्य अहिया-
 सिचय इत्यमन्तास्यस्य अहियासिचय
 पान्दरे अन्नपरे विस्वस्वमे फासे
 अहियासिचय द्विदिपदिभ्जायन
 कश्च नो स्याद्यदि अहियासिचय
 एव से कश्चैह कश्चिन्नयन आरिचय

१७—अहियास्य परकास्य मुञ्जो अनेक
 लक्ष्मणास्य कुञ्जसि सीमन्तास्य कुञ्जसि
 सेवकास्य कुञ्जसि इत्यमन्तास्यस्य
 कुञ्जसि पान्दरे अन्नपरे विस्वस्वमे
 फासे अहियास्येह

हैं, ताप स्पर्श को सह हैं, दश स्पर्श को
सह । हैं तथा अन्य भी अनुकूल प्रतिकूल स्पर्श सह
सका हैं, पर नग्न रहने का परिपह नहीं सहन कर
सका तो उसे कटि-वधन धारण करना कल्पता है ।

२७—अथवा को जीत सकता हो तो अचेल
ही रहे । उस रहते हुए तृण-स्पर्श, शीत-स्पर्श,
तेज-स्पर्श, दश-भङ्ग तथा ऐसे ही विविध
के करें—आ धरें—तो उन्हें सहन
करे ।

अथेते कापयिष आगमनापे एवे
 हे अमिसमन्ना गप मयह अमेव
 मगयथा परैर्ह्य एमेव अमिसमिष्वा
 सम्बन्धो सम्बन्धाप सम्बन्धेव
 सममिष्वाभिया

(सु० १ अ० ८ व० ७)

१८—जे मियहू सिदि बल्लेदि परिबुधिप
 पायबल्लेदि एत्त ए मी क्त
 मयह—बल्ले बल्ले ।
 हे अहेसमिष्वाद् बल्लाद् आश्रय ।
 अहापरिष्वादिपाद् बल्लाद्
 वारिष्वा मी शोष्वा मी शोष्वाद्

इससे प्राण होती है और तप भी प्राण
 होता है। ने जो कहा है, उसे ही
 सर्व से को जानते हुए रहे।

२८—जो मिथु तीन वख और चतुर्थ पात्र से
 है, उसके ऐसा विचार नहीं होता कि मैं चतुर्थ वख की
 करूँगा।

यह मिथु पपणीय वख की याचना करे।

मिथु मिले हों वैसे ही वख करे। वख न
 हुए और रंगी हुए वखों को न करे। ग्रामान्तर

कथाद् धारिणा अपकिञ्चोवसाने
 गामहरेसु क्षोमपेच्छि एव ह्य
 कथधारिस्त सामगिध ।

२३—अहं पुन थर ज्ञानिना—उवाइभक्ति
 कहु हेमति किन्हे पकिबन्ने
 अरापरिउत्थाद् कत्ताद् परिउपिणा
 अहुवा सतस्वरे अहुवा क्षोमपेके
 अहुवा एसाडे अहुवा कपेके ।
 कावधियं ज्ञानसामने एवे से अमि
 सवन्नाग्य मयद् अमेयं भराववा
 पवेइयं एमेव अमिसमिन्वा सव्यजो
 सव्यचारं सव्यधमेव सममि
 ज्ञानिना (सु० १ अ० ८ प० ४)

जाते हुए गोपन न करते हुए अल्प वस्त्रधारी हो। निश्चय ही यह वस्त्रधारी की सत्प्रग्री—उसका आचार है।

२५—अनन्तर ऐसा जानकर कि हिमन्त ऋतु बीत गई है, ग्रीष्म ऋतु आ गई है, मिश्र परिज्जीर्ण वस्त्रों को परठ दे, अथवा पास ही रखे, अथवा कुछ रखे, अथवा एक साटिक हो जाय, अथवा अचैलक हो जाय।

इस तरह लाघवता होती है, तप होता है।

यह जो सब महायान ने कहा है उसे ही जानकर सर्वशः सर्व प्रकार से समभाव को जाने।

१०—से वेमि ससगुन्सस वा असमकुन्सस
 वा असम वा पाप वा सासम वा
 सासम वा बस्य वा सडिग्राह वा
 पापपुत्र्य वा नो पापेया नो
 निमदिग्रा नो कुन्सा
 पर आडापमाये वि वेमि ।

११—सुव केव वादिग्रा असम वा
 आव पापपुत्र्य वा सडिवा नो
 सडिवा सुडिवा नो सुडिवा पर
 विग्रा वा विग्राकम्य विग्रात बस्य
 नोसेमाये ससेमाये बडेमाये
 पापेया वा निमदिग्रा वा कुन्सा

३०—मैं हूँ—मुनि गोष्ठ अथवा असमनोष्ठ
 असयति को , पान, , पख, प्रति
 और पादपुच्छन न दे, न उनके लिए उसे निमन्त्रित करे
 और न परम से उसकी वैयावृत्य करे ।

३१—यह भी भ्रूव जाली— , पान, ,
 , प्रतिग्रह अथवा पादपौछ मिला हो या न मिला
 हो, भोगा हो या न भोगा हो, पथ को छोड़ कर जाने से
 धर्म को मालने असयति मुनि जाते

बेवाबद्विय पर आवाहायमाने
दि बेमि (सु० १ अ० ८ व० १)

३२—से समनुत्ने असम्पुन्यस्य अक्षय
वा धाम वा काश्म वा साश्म वा
बल वा कबल वा पकिनाह वा
पायपुञ्जय वा नो पायका नो निम
दिक्का नो कुम्का बेवाबद्विय पर
आवाहायमाने दि बेमि ।

३३—सयकुत्ने समपुन्यस्य अक्षय वा
(५) बल वा (५) पायका
पिम्पिका कुम्का बेवाबद्विय पर
आवाहायमाने दि

(सु० १ अ० ८ व० २)

या आते दे या देने के लिए निमन्त्रित करे
अथवा वैद्यावृत्य करे तो उसे स्वीकार न करे ।

३२—समनोश्च मुनि असमनोश्च को , पान,
सा , न दे, न देने के लिए निमन्त्रित करे और
न से उसकी वैद्यावृत्य करे ।

३३—समनोश्च मुनि समनोश्च मुनि को , पान,
, , पात्र, प्रतिग्रह और पादपुष्प
दने के लिए निमन्त्रित करे और परम भाव से
उसकी वैद्यावृत्य करे ।

३४—ये भिक्षु परममिच्छा वा विद्विज्ज
 वा निसीद्वज्ज वा सुवद्विज्ज वा सुसायसि
 वा सुसागासि वा गिरिगृहसि वा ज्ज-
 मूळसि वा कुमाटायवणसि वा सुज्जे वा
 कट्टिसि विहरमाण्ये व भिक्षु उवसकमिदु
 गाहावर्हे भूवा भाउसवो समणा । अहं कहुं उव
 अट्ठाय अस्स वा पाण वा साहम वा साहम
 वा बत्त वा पडिमाह वा क्वळ वा पाव-
 पुच्छय वा पाणाह भूयाह जीवाह सवाह
 समारम्भ समुदिस्स कीय पामिण्य अण्डिज्ज
 अमिस्सु अमिहह आहदु केयमि आवसह
 वा समुत्तिणोमि से भुजह वसह ।
 भाउसवो समणा । भिक्षु व गाहावर्ह समणस

३४— मैं, शून्यागार में, गिरि- में, वृक्ष के मूल में, कुम्हार के आश्रय में अथवा कहीं साधना करते हुए, बैठते, विश्रांति लेते या विहरते हुए मिथु के समीप कोई गाथापति कहे आयुष्मान् । मैं आपके लिए प्राणी, मृत, जीव और सत्त्वों का भक्षण कर , पान, , वस्त्र, प्रतिग्रह, कंबल अथवा पादपौकन या आपके लिए सरोवर, अथवा उधार र, अथवा दूसरे से छीनकर, अथवा दूसरे की अनुमति बिना लेकर अथवा कहीं से आपको देता हूँ अथवा आपके लिए चिन्ता हूँ, आप इन्हें मोगें और इसमें रहें तो हे आयुष्मान् अमणो ! वह मिथु उस समन गाथापतिसे कहे

सबमस परिव्याप्तौ आससतो । गाहावई
 नो कलु ते वयण आहामि नो कलु ते वयण
 परिव्यामि नो तुम मम अह्राय असण वा
 (४) कलु वा (४) पायाइ वा (४)
 समारम्भ समुहिसि कीय पामिण्य अचिञ्ज
 अमिसु अमिहद आहदु वेयसि आवसह
 वा समुसिवासि । से विरभो आससो
 गाहावई । एवस्य अकरवयाय

३५—से मिसुं परमिसुं वा जाव
 कुरथा वा कर्हिचि विहरयाण व मिसुं
 सबसमिसुं गाहावई आवगयाय वेदाय असण
 वा (४) कलु वा (४) जाव आहदु वेय
 आवसह वा समुसिवाइ मिसुं परिव्यासेव

आयुष्मान् गाथापति । तुमजो मेरे लिए अशन, पान, वस्त्र, प्रतिग्रह, कवल, पादपोछन प्राणी, मृत जीव, और सत्त्वों का आरम कर करना चाहते हैं अथवा सरीदकर, अथवा उधार, अथवा दूसरे से छीनकर, अथवा दूसरे की अनुमति विना, अथवा कहीं से मेरे यहाँ मूखको देना चाहते हो, अथवा चिन्तना चाहते हो तो मैं तुम्हारे इन । को नहीं देता, उन्हें स्वीकार नहीं । हे आयुष्मान् गाथापति । इन बातों को न करने के लिए ही तो मैं विरत हुआ हूँ ।

३५— मैं, शून्य र में गिरि-गुहा में, पृथ्वी के मूल में, कुम्हार के आयतन में अथवा अन्य कहीं साधना करते हुए, रहते, बैठते, विश्रान्ति लेते या विहर्तते हुए मिथु को देखकर, आत्मा में विचारकर उसके भोजन या रहने के लिए प्राणी, मृत, जीवों और सत्त्वों का आरम

त च मिक्षु आणिका मह सम्भार्याप
 परवागरपेष अन्नेसि वा सुषा अय कण्ड
 गाहायई ममभट्टाप असन वा (४) बल्य वा
 आश चेषसि आवसह ना समुस्तिवाइ त च
 मिक्षु पत्रिडेहाय आगमिषा आणिका
 अनासेवयाप सि चेमि

३६—मिक्षुं च कण्ड पुडा वा अण्डा वा
 जे इमे आठय गथा वा पुत्रसि से इवा इणह
 अणह द्विपह एहह पयठ आकुंणह विष्णुपह
 सहसानारेह विष्णुराहुसह। से कासे धीरो

कर . पान, . वस्त्र, प्रतिग्रह, कंवल
 अथवा पादपोंछन वनावे अथवा उसके लिए सरीद करे,
 अथवा सवार लावे, अथवा दूसरे से छीनकर अथवा दूसरे
 की अनुमति बिना लेवे, अथवा कहीं से देवे, अथवा
 उसके लिए चिनाये— वनवाये और उस
 मिश्र को अपनी बुद्धि से, दूसरे के कहने से अथवा दूसरे
 से सुनकर यह बात मालूम हो कि वह गाथापति उसके
 लिए वैसा कर रहा है तो वह अच्छी जाँचकर,
 कर को मना करे—ऐसा या मेरे
 लिए अनैषणीय है—अमोघ्य है। ऐसा मैं हूँ।

३६—कोई गाथापति मिश्रसे पूछकर अथवा बिना पूछे
 महा अर्थ कर आहरादि वनाये और मिश्र के
 न करने पर क्रोधित हो उसे पीटे, अथवा कहे—
 इसे मारो, पीटो, काटो, जलावो, पकामो, लूटो, छीनो,

व च भिक्षु जाणित्वा मह सम्मद्वयाए
 परवागरणेय अन्नेसि वा सुवा अर्यं कहु
 गाहावई ममअट्टाए असण वा (४) वत्थ वा
 आण वेयसि आणसह वा समुत्तिष्णाह व च
 भिक्षु पट्टिलेहाए आगमिष्वा जाणित्वा
 अवासेवणाए सि वेमि

३६—भिक्षुं च कहु पुट्टा वा अट्टा वा
 ने इमे आट्ठव गाथा वा पुससि से हवा इणाह
 त्थणह विवह दडह पयह अत्तुपह भिक्षुपह
 सहसाकारेह विपरामुसह। वे फाहे वीरो

पुत्रो बहिषास्य बहुवा आचारगोचरमाश्रितो
 वक्षिष्या ऋषयेच्छिष्य बहुवा वशुचीय गोपरस्त
 अणुयुग्मेण सप्त पठित्थेष्य आश्रयगुणे पुत्रोहि
 एव्यं पवेद्य । (सु० १ अ० ८ व २)

३०—इ मिकर्तुं सीयफासपरिवेवमाणगाथ
 एवसकमिता गाहावर्हं भूया आरुसतो
 समया । नो कहु वे गामधन्मा उव्याहृदि ।
 आरुसतो गाहावर्हं । नो कहु मम
 गामधन्मा उव्याहृदि, सीयफास य नो कहु
 अह सथापमि बहिषासित्यय । नो कहु वे
 कम्पइ अगणिकाय उव्याच्छिष्य वा पव्याच्छिष्य
 वा काय आवाचित्य वा पयाचित्य वा,
 अन्नेसि वा वषणावो

मार डालो अथवा अनेक तरह से तग करे तो इस तरह सकट में पड़ा हुआ वह धीरे मुनि सब सहन करे अथवा तर्कपूर्वक अपना आचारगोचर बतलावे अथवा मौन रह आत्मगुण ही गोचरो की अनुक्रम से शुद्धि करता हुआ विचरे। ऐसा मुनि ने कहा है।

३७—उस भिक्षु का शरीर शीत से काँपता देख गाथापति कहे—हे आयुष्मान् ! कहीं आपको इन्द्रिय-विषय तो पीड़ित नहीं कर रहे हैं, तो मुनि कहे : आयुष्मान् गाथापति ! निश्चय ही मुझे ग्राम-विषय नहीं सताते। शीत के स्पर्श को मैं सहन नहीं कर मुझे साप्रिकाय या प्रज्वलित करना नहीं कल्पता। मैं आग भी नहीं ताप सकता। न अन्य को कहकर ऐसा कल्पता है।

पुत्रो अहिवास्य अतुषा आचार्यगोवरमाश्रिते
 वक्षिमा फलपेक्षित अतुषा वक्षुचीय गोवरस्त
 अणुतुष्येय सम पक्षिष्य आचक्षुते कुर्वेहि
 एवं पक्षेय । (सु० १ अ० ८ व २)

१७—य मित्तु सीयफासपरिवेवमाजगाम
 क्वसकमिष्ठा माहावई पूवा आचक्षुते
 समजा । नो क्खु वे गामपम्मा क्ख्वाह्वि ?
 आचक्षुते गाहावई । नो क्खु मम
 गामपम्मा क्ख्वाह्वि, सीयफासं व नो क्खु
 क्खु सचापमि अहिपासिचय । नो क्खु मे
 क्खु अगमिकाय क्ख्वासिचय वा पम्मासिचय
 वा फास आयासिचय वा पयासिचय वा,
 अन्नेसि वा वयणाओ

भार खाली अथवा अनेक तरह से लग करे तो इस तरह
 में पड़ा हुआ वह धीरे मुनि सब सहन करे अथवा
 तर्कपूर्वक अपना आचारगोचर बतलावे अथवा मौन रह
 आत्मगुप्त हो गोचरो को अनुक्रम से शुद्धि हुआ
 विचरे । ऐसा मुनि ने कहा है ।

३७—उस मिथु का शरीर शीत से काँपता देख
 गाथापति कहे—हे आयुष्मान् । कहीं आपको
 इन्द्रिय-रि तो पीड़ित नहीं कर रहे हैं, तो मुनि कहे
 आयुष्मान् गाथापति । निश्चय ही मुझे ग्राम-विषय नहीं
 सताते । शीत के स्पर्श को मैं सहन नहीं कर स
 मुझे अग्निकाय या प्रज्वलित नहीं
 । मैं आग भी नहीं ताप । न अन्य को
 कहकर ऐसा कराना । है ।

सिया स एव क्वचस्त्व परो अगधिकान्
 क्वचाङ्किता पञ्चाङ्किता काय आयाधिक्य
 वा पयाधिक्य वा उ च मिकन् पङ्किहेदाय
 आगमिन्ना आणधिक्या अणसेवयाप
 सि चेति

(सु० १ अ० ८ सू० ३)

३८—अस्त्व न मिकन्नुस्त्व एवं यथाह उद्धो
 अयसो आहमसि नाहमाहमसि निश्चरसकमव
 मिकन्नायदिय गमयाप से एव क्वचस्त्व परो
 अमिहत् असन वा (४) आहद्दु वक्ष्यन्वा
 से पुण्यामेव आहोदन्वा आरुध्वो । यो

कदाचित् मुनि के ऐसा कहने पर वह गाथापति
अग्निकाय सज्ज्वलित कर प्रज्वलित करे, उसके शरीर
को आतापित करे, प्रतापित करे तो मिश्र यह कहे—
अग्नि-सेवन मेरे लिए अकल्पनीय है। ऐसा मैं कहता हूँ।

३८—यदि मिश्र के मन में ऐसा ही कि मैं संकट में
आ पड़ा हूँ, निर्बल हूँ और घर-घर मिठा-
चर्या करने में र्थ हूँ और उसे ऐसा कहते चुनकर
कोई , पान, खाद्य, देना चाहे तो
वह मिश्र पहले ही कहे—आयुष्मान् गाथापति। मेरे लिए

कष्ट मे कल्प्य अमिह्य अक्षय वा (४)

अक्षय वा पावय वा अन्ते वा एवमगारे

(कु० १ अ० ८ व० ३)

३६—अशुभमेव विमोहात्,

आह बीरा समासम्ब ।

अशुभतो मयतो,

सम्ब नवा अपेक्षित ॥

३७—दुविहवि विहताय,

दुदा पन्नास्य पारया ।

अशुभवीह्य दरजाय,

आरयातो विह्वै ॥

सम्पन्न हुआ आदि अथवा कोई पदार्थ
 या पीना नहीं करपता ।

३९—सयमी, और घोर पुरुष अनुपूर्वी से
 (हुआ) समी अनुपम धार्मिक मरणों को
 जान, मोह रहित मरणों में से (शक्ति अनुसार)
 एक को (समाधि करे) ।

४०—धर्म के पारगामी बुद्ध पुरुष प और
 अपठित मरणों को , यथा क्रम से
 का करते हुए, के को आरम्भों
 से निवृत्त हैं ।

४१—कसाप पयजू किञ्चा,
 अष्पाहादे विविक्काय ।
 अह मिक्हू मिक्काइञ्चा,
 आहारस्तेव अन्तिव्य ॥

४२—शीषिय नामिक्हूञ्चा,
 मरय नोवि पत्तय ।
 हुहभोऽवि न सञ्जिञ्चा,
 शीषिय मरये वहा ॥

४३—अम्मावो निक्करापेही,
 समादिवणुपाळय ।
 अतो वदि मिक्हूञ्चा,
 अण्णय सुदयेसय ॥

४१—वह कपायी को प्रतनु—क्षीण कर अल्पाहार हुआ रहे तथा तिलिषा भाव रखे। जब भिक्षु ग्लान हो तो वह आहार के समोपन —उत्तका सर्वथा कर दे।

४२—वह जीने की आशा न करे और न मरने की ही प्रार्थना—कामना—करे। वह जीवन और दीनो में ही न हो।

४३—वह में स्थित हो, निर्जरा की अपेक्षा हुआ समाधि का करे। अन्त्यन्तर और का कर वह विन्दुद अध्यात्म का अन्वेषण करे।

४४—अ किमुबन्धनं वापि,
 नाहं सेयस्समप्पयो ।
 वस्सेव अन्वरद्दापु,
 सिप्प सिमिञ्जणवपण्डिय ॥

४५—गामे वा बहुवा एणे,
 पठिअं पठिअेदिवा ।
 अण्णपाणं तु विस्साव,
 एणाइं सवरे सुणी ॥

४६—अणाहारो तुयट्ठिअा,
 उओ कल्लजदियासव ।
 माइवेअं अचरे,
 माणुस्सेदि विपुअ ॥

४४—यदि उसे अपने आयु-क्षेम में किंचित् भी
 मालूम दे तो उसके में पण्डित साधक
 ही मरु परिक्षा आदि को करे ।

४५-४६—ग्राम अथवा में मुनि का
 परिलेखन कर प्राणि-रहित जगह जान मुनि तृण विछावे ।
 का कर तृणों पर करे, वहीं परिप्लों
 से स्पृष्ट होने पर उन्हें करे और मानुषिक ाँ
 से स्पृष्ट होने पर मर्यादा का न करे ।

४३—ससपगा न ते पापा,
 ते प ससुमाहारा ।
 सुख सि मससोपिप,
 न ह्यमे न पससप ॥

४८—पापा वैद विदिसदि,
 डापायो नधि ससमे ।
 वासवेदि विविसेदि,
 सिप्यमाणोऽहिवासप ॥

४९—सवेदि विविसेदि,
 पारप ।
 पसादियसरा वेव,
 सविपसस विपानयो ॥

४७—सरोसुप्त, अथवा अथ चर प्राणी
मांस को नोचे अथवा शोणित का पान करें, तो उनको
न मारे और न उन्हें दूर करें।

४८—जीव जन्तु देह को हिंसा करते हों, तब भी
मुनि उस से न जावे। हिंसा आदि
आ से दूर तुष्ट से कष्टों को करें।

४९— और प्रश्रियों से दूर रह कर
समाधिपूर्वक आयुष्य को पूरा करें। गीतार्थ सयमी के
लिए यह इंगित है।

१०—एव हे अक्षरे घन्ने,
 नावमुत्तेष साक्षि ।
 आयवञ्ज पञ्जीवार,
 विञ्जद्विञ्जा विहा विहा ॥

११—हरिपु न निवञ्जिञ्जा,
 धण्डल मुञ्जिवा एव ।
 विञ्जोश्चिञ्ज अणाहारो,
 पुञ्जो एवञ्जिवाएव ॥

१२—इन्दिपदि गिञ्जायतो,
 समिष्य आक्षरे मुञ्जी ।
 एहापि हे अगदिदे,
 अचके वे असाक्षि ॥

५०—ज्ञातपुत्र के द्वारा अच्छी तरह गया
दूसरा इगित मरण धर्म है, इसमें सुद को छोड़ से
प्रतिवार—सेवा—कराने का त्रियोग से त्याग करे।

५१—मुनि हरित—दूर्वादियुक्त मूमि—आदि पर न
सोवे। मूमि को प्रासुक सोवे। शरीर की
व्युत्सर्ग कर करे। वहा उपसर्गों से स्पुष्ट होने
पर करे।

५२—(निराहार के) इन्द्रियों के
होने पर मुनि चित्त के " " को रत्ने। इगित मरण में
अपने में चलन आदि हुआ वह निन्द्य
नहीं होता, यदि वह भावना में और समाहित
होता है।

१३—असिक्कमे पक्कमे,
सङ्कप पसारए ।
कावसाहारएत्ताए,
इत्थवाणि अयेयणो ॥

१४—परिक्कमे परिक्कित्ति,
अदुवा चिट्ठे अटायए ।
ठापे ण परिक्कित्ठे,
निस्सीइत्था य अत्तसो ॥

१५—आसीयेऽयेत्थि मरणं,
इत्थियाणि समीरए ।
कोत्तावास समासङ्ग,
विवाह पाठे एए ॥

५३—इगित्त मरण में मुनि काया को स देने के लिए करे, टहले, अंगीपागों को सकुचित करे, प्रसारित करे, अथवा इसमें भी अचेतन जखवत् निश्चल रहे।

५४—परि होने पर वह टहले, अथवा यथावत् सड़ा रहे। यदि सड़ा रहने से परिक्रान्त हो, तो वह में पुन बैठे।

५५—अनुपम मरण में आसीन मुनि इन्द्रियों को से हटावे, धुन वाले पाटे के प्राण होने पर अन्य जीव रहित पाटे की गद्येणा करे।

११—अथो बन्ध समुपगमे,
 न तत्र अवलम्बयत् ।
 तत्र लक्ष्मणे अप्याय,
 सखे सत्वद्विवाचय ॥

१२—अथ पायसतरे सिखा,
 यो एवमनुवाचय ।
 सम्बगायनिरोद्देशि,
 ठाणाथो नपि कर्ममे ॥

१८—अथ से कर्ममे बन्धे,
 पुम्बद्वायस्त पगाहे ।
 अथिर पविठेहिवा,
 विदरे विद् माहमे ॥

५६—जिससे पाप की उत्पत्ति हो, उसका अवलम्बन न करे। पाप कार्यों से बच अपनी का करे। परिषद् से स्पृष्ट होने पर उन्हें सहन करे।

५७—अब आगे जानेवाला पादोपरामन इगित्त मरण से भी बचकर है। जो पालन है, वह सारे अज्ञों के जकड़ जाने पर भी अपने स्थान से किंचित् मात्र भी नहीं ।।

५८—यह आत्मधर्म पादोपरामन पूर्व कथित मरणों से भी विशेष रूप से है। प्रासुक मुनि को देख माहान—मुनि, वहीं यह पादोपरामन मरण का पालन करे।

१६—अथित तु समासम्,
 ठावप एव अण्मा ।
 बोसिरे सम्बसो काय,
 न मे वैरे परीसहा ॥

१७—वाचजीव परीसहा,
 अ्यसम्मा इति सद्सत्त्वा ।
 ससुदे वैद मेवाप,
 इव पन्नेऽरियासप ॥

१८—मेवरेसु न रथिजा,
 कामेसु बसुवरेसुवि ।
 इत्था सोम न सेविजा,
 सुयवन्न सपेहिया ॥

५९—अचित्त स्थान को वहाँ अपने आपको स्थित करे। को ' ध्युत्सर्ग करे और परिपहों के आने पर सोचे : मेरे शरीर में परीपह नहीं है।

६०—जब तक यह जीवन है तब तक ये परीपह और उपसर्ग हैं, ऐसा जानकर देह-भेद के लिए संयुत, उनको से सहन करे।

६१—यह नश्वर विपुल काममोगों में रंजित न हो। प्रुष वर्ण—मोक्ष—की ओर दृष्टि रख, वह और लोभ का सेवन न करे।

१२—सासपहि निमन्त्रिणा,
 दिव्यमाय न सरे ।
 त पशुमुक्त माहणे
 सज्ज न्य विहृमिषा ॥

१३—सज्जदोहि जमुशिय,
 सासकाहस्य पारय ।
 विविक्त पर न्या,
 विमोहन्वर्त दिव ॥
 विवेसि ॥

६२—कौई जीवनपर्यन्त नहीं नाश होनेवाले शा
 ऐश्वर्य के लिए निमंत्रित करे, तो भी मुनि उस देव माया
 में रि स न करे। हे माहल। वे अच्छी तरह
 , सब का त्याग कर।

६३—सर्व इन्द्रिय विषयों में मूर्छित न होता हुआ,
 वह आयुष्य को पूर्ण करे। तिसिक्षा को परम धर्म
 मोह रहित मरणों में से किसी एक को
 हितकर है। ऐसा मैं कहता हूँ।

